वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

वर्ष ५७ अंक २ फरवरी २०१९

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

फरवरी २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक २

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–

(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ

अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124

IFSC CODE : CBIN0280804

कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;

५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com

वेबसाइट : www.rkmraipur.org

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान - रायपुर

२. प्रकाशन की नियतकालिकता - मासिक

३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक - स्वामी सत्यरूपानन्द

५. सम्पादक - स्वामी प्रपत्त्यानन्द

राष्ट्रीयता - भारतीय

पता - रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

स्वत्वाधिकारी - रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण - स्वामी स्मरणानन्द, स्वामी प्रभानन्द, स्वामी वागीशानन्द, स्वामी गौतमानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी शिवमयानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी ज्ञानव्रतानन्द, स्वामी सत्येशानन्द और स्वामी अच्युतेशानन्द।

मैं स्वामी सत्यरूपानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)
स्वामी सत्यरूपानन्द

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

श्रीरामकृष्ण देव का यह मन्दिर ढाका (बांग्लादेश) स्थित रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन का है।

फरवरी माह के जयन्ती और त्योहार

६	**स्वामी ब्रह्मानन्द**
९	**स्वामी त्रिगुणातीतानन्द**
१०	**सरस्वती पूजा**
१२	**नर्मदा जयन्ती**
१९	**स्वामी अद्भुतानन्द**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
रंजना प्रतीक बोस (स्मृति में, सुप्रतिम बोस) कोलकाता	५०,०००/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५३७. श्री अखिलेश सिंह, कटोरा तलाब, रायपुर (छ.ग.)	राजकीय उच्च. मा. विद्यालय, खरूआँव, जि.-बलिया (उ.प्र.)
५३८. श्रीमती कृष्णा बॅनर्जी, शंकरनगर, रायपुर	डूमडूमा कॉलेज, पो. रूपाई सिडिंग, जि.-तिनसुकिया, असम
५३९. ” ”	गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज, मु./पो. तलेनी, जि.-राजगढ़ (म.प्र.)
५४०. श्री अनुराग, (स्मृति में, श्री रामराज एवं श्रीमती उषा प्रसाद) दिल्ली	शा. मदनलाल शुक्ल महाविद्यालय, पो.-सीपत, बिलासपुर (छ.ग.)
५४१. ” ”	गवर्नमेंट कॉलेज, पो.- असींद, भीलवाड़ा (राजस्थान)
५४२. ” ”	गवर्नमेंट कॉलेज, मु./पो.-सुल्तानपुर, जिला-चम्बा (हि.प्र.)
५४३. सौ. स्नेहल नीरज दापके, भारत नगर, नागपुर (महा.)	गवर्नमेंट गर्ल्स कॉलेज, सदर, बैतुल (म.प्र.)

सरस्वती-स्तोत्रम्

रविरुद्रपितामहविष्णुनुतं हरिचन्दनकुङ्कुम पङ्कयुतम्।
मुनिवृन्दगजेन्द्र समानयुतं तव नौमि सरस्वति पादयुगं।।
शशिशुद्धसुधाहिमधामयुतं शरदम्बरबिम्बसमानकरम्।।
बहुरत्नमनोहरकान्तियुतं तव नौमि सरस्वति पादयुगं।।
कनकाब्जविभूषितभूतिभवं भवभावविभाषितभिन्नपदम्।
प्रभुचित्तसमाहितसाधुपदं तव नौमि सरस्वति पादयुगं।।
भवसागरमज्जनभीतिनुतं प्रतिपादितसन्ततिकारमिदं।
विमलादिकशुद्धविशुद्धपदं तव नौमि सरस्वति पादयुगं।।
मतिहीनजनाश्रयपादमिदं सकलागमभाषितभिन्नपदं।
परिपूरितविश्वमनेकभवं तव नौमि सरस्वति पादयुगं।।
परिपूर्णमनोरथधामनिधिं परमार्थविचारविवेकविधिम्।
सुरयोषितसेवितपादतलं तव नौमि सरस्वति पादयुगं।।
सुरमौलिमणिद्युतिशुभ्रकरं विषयादिमहाभववर्णहरम्।
निजकान्तिविलेपितचन्द्रशिवंतवनौमिसरस्वतिपादयुगं।।
गुणनैककुलं स्थितिभीतपदं गुणगौरवगर्वितसत्यपदम्।
कमलोदरकोमलपादतलं तव नौमि सरस्वति पादयुगं।।

पुरखों की थाती

पापं प्रज्ञा नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः।
नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।।६२७।।

– बार-बार पाप को दुहराने से व्यक्ति की विवेक-बुद्धि का नाश हो जाता है और जिसकी विवेक-बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, वह सर्वदा पाप-कर्मों में ही लगा रहता है। (विदुरनीति)

पुण्यं प्रज्ञा वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः।
वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः।।६२८।।

– बार-बार पुण्य करते रहने से व्यक्ति की विवेक-बुद्धि बढ़ती जाती है और विवेक-बुद्धि से युक्त व्यक्ति सर्वदा पुण्य-कर्मों में प्रवृत्त होता है। (विदुरनीति)

कलहान्तानि हर्म्याणि कुवाक्यान्तं च सौहृदम्।
कुराजान्तानि राष्ट्राणि कुकर्मान्तं यशो नृणाम्।।६२९।।

– आपसी झगड़ों से घर-परिवार टूट जाते हैं, कटु वाक्यों से मित्र टूट जाते है, बुरे शासकों से राष्ट्र टूट जाते हैं और बुरे कर्मों से यश-कीर्ति नष्ट हो जाती है। (पंचतन्त्र ५/७२)

सुखार्थी चेत् त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत्सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।।६३०।।

– जो व्यक्ति सुख का खोजी है, उसे विद्यालाभ की आशा छोड़ देनी चाहिये और जो विद्या का खोजी है, उसे सुख पाने की आशा छोड़ देनी चाहिये, क्योंकि सुख के खोजी को विद्या कैसे मिल सकती है और विद्या के खोजी को भला सुख कैसे मिल सकता है। (चाणक्य)

विविध भजन

मैं भी तुमको पाऊँ

सुखद राम पाण्डेय

तुम्हें देख दुनिया के दुख सब भुलाऊँ,
मेरे प्रभु हमेशा शरण तेरी आऊँ।।१।।
सदा नाम मुख पर तुम्हारा रहे प्रभु !
जिधर जाऊँ तेरा ही साया सजे प्रभु !
समय तेरी सेवा में अपना लगाऊँ,
तुम्हें देख दुनिया के दुख सब भुलाऊँ।।२।।
सदा याद रक्खूँ मैं लीला तुम्हारी
भक्तों के हित चित्त हे अवतारधारी !
तेरे प्रेम में मग्न होकर मैं गाऊँ,
तुम्हें देख दुनिया के दुख सब भुलाऊँ।।३।।
हुआ धन्य संसार तेरी कृपा से,
मिला त्राण दुखियों को महती दया से,
तेरी याद में नित दीये मैं जलाऊँ,
तुम्हें देख दुनिया के दुख सब भुलाऊँ।।४।।
कलयुग में कामारपुकुर में आये,
दुखी-दीन जन को हे प्रभु! खूब भाये,
माँ सारदा के स्वामी! मैं भी तुमको पाऊँ,
तुम्हें देख दुनिया के दुख सब भुलाऊँ।।५।।

जय जगदीश्वरी मात सरस्वती

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

जय जगदीश्वरी मात सरस्वती, शरणागत प्रतिपालनहारी।
चन्द्रबिम्ब सम वदन विराजे, शीश मुकुट माला गल धारी।।
वीणा वाम अंग में शोभे, सामगीत ध्वनि मधुर पियारी।
श्वेत वसन कमलासन सुन्दर, संग सखी शुभ हंस सवारी।
'ब्रह्मानन्द' मैं दास तुम्हारो, दे दरशन परब्रह्म दुलारी।।

आज अयोध्या धाम

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

आज अयोध्या धाम चलो रे मन आज अयोध्या धाम।
जहँ दसरथ घर बेटा बनि कैं प्रगट भये श्रीराम।।
चलो रे मन आज अयोध्या...
मगन भई कौशिल्या मैया, पायो पुत्र राम रघुरैया
सहज सलोने श्याम, चलो रे मन आज ...
भृकुटि कमान नयन रतनारे,
गोल कपोल अधर अरुनारे,
नसा चिबुक ललाम, चलो रे मन आज ...
कुंचित कच जुग श्रवन मनोहर,
नाभि गम्भीर लगत अति सुन्दर,
छवि लोचन अभिराम, चलो रे मन आज ...
कर कोमल हरत हैं मन कों,
चरन कमल शरणागत जन कों,
देत परम विश्राम, चलो रे मन आज ...
जय जयकार होत दिसि दसहू,
महि धरि माथ करत राजेशहु,
अपने प्रभु को प्रणाम, चलो रे मन आज ...

तुम विद्या ज्ञान प्रदाता हो

चन्द्रमोहन

अखण्ड मधुमय ब्रह्म तुम्हीं, तुम विद्या ज्ञान प्रदाता हो।
मुझको चरणों में रख लेना, तुम ज्योतिरूप विधाता हो।।
पंचतत्त्व मेरे अन्दर, शुद्ध भाव को प्राप्त करें।
पाँचों कोष शमित होकर, प्रेमास्पद रस का पान करें।।
शब्द रूप रस गंध सभी, तेरी ही सदा, खबर लायें।
स्पर्श करूँ तो चरण तेरे, सब भाव तुम्हीं में समा जायें।।
ज्ञान प्राप्ति की बाधायें, तेरी किरपा से कट जायें।
मन वचन कर्म सब पावन हों, भाव काम के मिट जायें।।
स्वर्ग आदि की चाह न हो, मन में हो तेरी ही बैठक।
तन मन धन सब तेरा हो, दारा सुत सब तेरे सेवक।।
मन में हो वास न विषयों का, जल जायँ सभी तुझमें मिलकर।
तत्त्व ज्ञान के योग्य बनूँ, दुर्गुण छूटें सब तप-तप कर।।
गुरुमुख के वाक्य प्रकट होकर, हृदय में बोध जगा पायें।
एकत्व बोध मैं कर पाऊँ, प्राणों में ब्रह्म समा जायें।।

श्रीरामकृष्ण के जीवन में माँ सरस्वती की आराधना

सरस्वती माता विद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं। वे आदि जगदम्बा हैं, जगद्व्यापिनी हैं। वे लोकमानस की जड़ता, तमान्धता, अज्ञानता का हरण करती हैं और सर्वविद्या अधिगत करने की विमल तीक्ष्ण बुद्धि प्रदान करती हैं। वे लोक व्यवहार में सफलता हेतु सुबुद्धि प्रदान करती हैं। वे अध्यात्म विद्या में सिद्धि प्राप्ति हेतु विवेक और प्रखर मेधा प्रदान करती हैं। वे प्रजापति ब्रह्मा की धर्मप्रिया, जगदीश्वरी और भगवती हैं। सरस्वती माता की कृपा के बिना व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता। किसी साधक ने कितनी सुन्दर स्वाभिव्यक्ति प्रदान की है –

न स्यात् कृपा यदि तव प्रकट प्रभावे।
न स्युः कथञ्चिदपि ते निजकर्मदक्षाः।।

अर्थात् हे माता ! यदि तुम्हारी मानव पर प्रत्यक्ष कृपा न हो, तो संसार में लोग किसी भी क्षेत्र में अपने कार्यों में निपुण नहीं हो सकते, कार्यकुशल नहीं हो सकते।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में – किसी कार्य हेतु, व्यावहारिक जीवन हेतु, लौकिक-पारलौकिक, भौतिक-आध्यात्मिक, अभ्युदय-निःश्रेयस्, श्रेय-प्रेय हेतु अल्पाधिक बुद्धि की आवश्यकता तो पड़ती ही है। उस बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी, उस बुद्धि की स्वामिनी, तो माँ सरस्वती जी हैं। इसलिये इनकी आराधना, इनकी अर्चना-पूजा कर इनसे सुबद्धि प्राप्ति करना, सभी मनुष्यों का प्रथम कर्तव्य है।

भारतीय संस्कृति में बसन्त पंचमी के दिन माँ सरस्वती की विशेष रूप से पूजा होती है। सम्पूर्ण शिक्षा संस्थानों में माँ सरस्वती की विशेष पूजार्चना की जाती है। कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से मूर्ति या चित्र रखकर सरस्वती माँ की पूजा करते हैं। विशेषकर छात्र-छात्राएँ सरस्वती माता की पूजा विशेष रुचि से करते हैं। कई स्थानों पर मूर्ति रखकर पूजा होती है और कई जगह चित्र रखकर पूजा का आयोजन करते हैं। अध्यापक-विद्यार्थी सभी इस पूजा में निष्ठापूर्वक संलग्न होते हैं। छात्र-छात्रायें कई दिन पहले से सरस्वती पूजा की तैयारी करते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों की तैयारी करते हैं, पूजा के दिन पूजन-सामग्री-पुष्प, अक्षत, चन्दन, सिन्दूर, फल-मिठाई आदि की तैयारी करते हैं। पूजन के समय बैठकर माँ सरस्वती से विद्या में सफल होने की प्रार्थना करते हैं और प्रणाम करते हुये कहते हैं –

वीणा पुस्तक रंजित हस्ते।
भगवति भारति देवि नमस्ते।।

हाथों में वीणा-पुस्तक धारण करनेवाली भगवती सरस्वती देवि ! हम आपको नमस्कार करते हैं।

माँ सरस्वती का श्वेतवस्त्र स्वच्छता, शुद्धता और पवित्रता का प्रतीक है। एक हाथ में पुस्तक शास्त्रादि विद्योपासना का प्रतीक है। दूसरे हाथ में वीणा जीवन में सरसता का संदेशक है। यानि सर्वविद्याओं में निष्णात होने के बाद अहंकारी, कर्कश मत होना, विनम्र और मधुर होना। हाथों में स्फटिक की माला है। श्वेत कमलासन पर विराजमान हैं। हमारे हृदय-कमलासन में माँ सदा विराजमान रहती हैं, उनकी अर्चना-पूजा करने पर वे अपनी महिमा, अपना स्वरूप प्रकट कर, आराधक को सम्पूर्ण दुराग्रहों, संशयों, अज्ञानताओं से मुक्त कर उसके चित्त को ज्ञानालोक से प्रकाशित करती हैं।

बसन्त ऋतु के प्रारम्भ में माँ सरस्वती की पूजा होती है। बसन्त ऋतु की मादकता हमारी बुद्धि को जड़ न कर दे, इसलिये माँ सरस्वती से हम तमान्धता हरण और सुबुद्धि-

विवेक प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं।

यद्यपि माँ सरस्वती की पूजा करते हुए अधिकांश शिक्षा क्षेत्र के विद्यानुरागी ही देखे जाते हैं, किन्तु ऐसी धारणा समीचीन नहीं है। माँ सरस्वती द्वारा प्रदत्त बुद्धि की आवश्यकता, तो लोक-व्यवहार, व्यापार, जीविकोपार्जन सभी क्षेत्रों में है। इस सम्यक् बुद्धि के अभाव के कारण ही तो व्यक्ति जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में असफल हो जाता है और जगत की ठोकरें खाता रहता है। सम्पत्तिशाली होते हुए भी सुबद्धिहीनतावशात् उसका सम्यक् उपयोग नहीं करने के कारण वह दुखी रहता है। सद्बुद्धि के अभाव में परिवार-समाज में यथोचित व्यवहार नहीं होने के कारण परिवार-समाज में विखण्डन होता है, जो दोनों के लिए दुखदायक होता है।

अत: हम अपने अन्तर्बाह्य दानवों से शौर्यपूर्वक युद्ध कर विजयी होने के लिये माँ काली की उपासना करें, समृद्धि हेतु माँ लक्ष्मी की उपासना करें, लेकिन शौर्य, समृद्धि, तेज, ओज, बुद्धि-विवेक आदि सबके सम्यक् सदुपयोग हेतु माँ सरस्वती की उपासना करें। माँ सरस्वती की उपासना सबके लौकिक और पारलौकिक, जागतिक एवं पारमार्थिक प्रगति के लिए विहित एवं आवश्यक है।

इस विद्या की बड़ी विलक्षण विशेषता यह है कि जितना ही इसे खर्च करते हैं, उतना ही बढ़ती जाती है –

अपूर्वकोषोऽयं विद्यते तव भारती।

व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात्।।

– हे भारती ! तेरा ऐसा अद्भुत कोष है कि व्यय करने से बढ़ता है और संचय करने से क्षय हो जाता है।

सरस्वती माता की आराधना अनादि काल से ऋषि-मुनि करते चले आ रहे हैं। प्राचीन शास्त्र-परम्परा में तो विद्यादेवी की आराधना जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग था। युगावतार और युगाचार्यों ने अपने बाल्यकाल में गुरुगृह जाकर विद्याग्रहण की है और उदारचित्त से दूसरों को प्रदान कर इस परम्परा को अक्षुण्ण रखकर विद्यादेवी को सुप्रतिष्ठित किया है।

माँ सरस्वती के आराधक भगवान श्रीरामकृष्ण

कलियुग के जीवों के उद्धारार्थ सरल सहज पन्थ द्वारा उद्धारक युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव के दिव्य लीला-जीवन में भी सरस्वती माता की आराधना दृष्टिगोचर होती है। आइये, देखते हैं कि सर्वत्यागी अष्टपाशमुक्त सर्वदेवदेवीस्वरूप श्रीरामकृष्ण ने कैसे सरस्वती माता की आराधना की थी और वीणापाणि शारदा किस प्रकार उनके जीवन में अपनी सर्वविधाओं के साथ अभिव्यक्त हुई थीं।

सरस्वती माता विद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं और भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने उनकी किस प्रकार आराधना की थी, कैसे विद्या की सभी विधाओं को अपने जीवन में अंगीकार किया था, इसकी चर्चा करने के पहले हम विद्या की परिभाषा और स्वरूप को जान लें। तब हमें इसे सरलता से समझने में सहायता मिलेगी।

तैत्तिरीयोपनिषद के द्वितीय अनुवाक में शिक्षा की व्याख्या की गई है, जैसे **– शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।। १।।**

अर्थात् हम शीक्षा की व्याख्या करते हैं। वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान शिक्षणीय है। इसे शीक्षाध्याय कहा गया है। भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजी इस पर भाष्य लिखते हैं **– शिक्षा शिक्ष्यतेऽनयेति वर्णाद्युच्चारणलक्षणम्। शिक्ष्यन्त इति वा शिक्षा वर्णादयः। शिक्षैव शीक्षा।** अर्थात् जिसके द्वारा वर्णादि का उच्चारण सीखा जाय, उसे 'शिक्षा' कहते हैं अथवा जो सीखे जायँ वे वर्ण आदि ही शिक्षा हैं। शिक्षा को ही 'शीक्षा' कहा गया है।

यह शिक्षा विद्याराधना का प्रारम्भिक मुख्य अंग है। लेकिन हम विद्यादेवी सरस्वती की आराधना हेतु विद्या को ठीक-ठीक समझने के लिये आइये मुण्डकोपनिषद का अवलोकन करते हैं और देखते हैं कि ऋषि क्या कह रहे हैं।

मुण्डकोपनिषद में एक आख्यान आता है, जिसमें शौनक नामक महागृहस्थ ने अंगिरा ऋषि से जाकर पूछा –

कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।। १/१/३

– हे भगवन् ! किसके जान लेने से यह सब कुछ जान लिया जाता है? तब अंगिरा ऋषि ने उत्तर दिया –

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।। १/१/४

ऋषि अंगिरा ने कहा कि ब्रह्मवेत्ताओं ने कहा है कि दो विद्यायें जानने योग्य हैं – एक परा और दूसरी अपरा।

(क्रमशः)

पंडित रामेन्द्र सुन्दर भक्तितीर्थ भट्टाचार्य की श्रीरामकृष्ण देव विषयक पवित्र स्मृतियाँ

संकलक – स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

(पंडित रामेन्द्र सुन्दर भक्तितीर्थ भट्टाचार्यजी का जन्म अक्तूबर १८७६ में हुआ। वे कलकत्ता हाथिबागान स्थित संस्कृत वेद विद्यालय के संस्थापक तथा प्रधान अध्यापक थे। उन्होंने इस पाठशाला में साठ वर्ष तक भारतीय तत्त्वज्ञान का अध्यापन किया। भारत सरकार ने उन्हें १९७१ में आदर्श शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित किया। १९६० में उनका श्रीश्रीरामकृष्ण भागवतम् ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। श्रीरामकृष्णदेव ने उन्हें स्वप्न में आदेश देकर ग्रन्थ लिखने के लिए प्रेरित किया था। इस ग्रन्थ में ५००० संस्कृत श्लोक हैं। १००० पृष्ठों के इस ग्रन्थ में ३१ अध्याय हैं। आदि, मध्य, अंत लीला ऐसे इस महाकाव्य का क्रम है। रामकृष्ण संघ के दशम संघाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने इसकी प्रस्तावना लिखी है तथा भारत सरकार ने ग्रन्थ मुद्रण हेतु अनुदान दिया था। पंडित रामेन्द्र सुन्दर भक्तितीर्थ भट्टाचार्यजी के वंश में संस्कृत महापंडितों की परंपरा थी। उनके पिताजी श्री यदुनाथ सरकार शास्त्र के पंडित थे। १८८२ में वे अपने पिताजी के साथ दक्षिणेश्वर गए थे, तब उन्हें श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन तथा आशीर्वाद प्राप्त हुए थे।)

पं रामेन्द्र सुन्दर भक्तितीर्थ भट्टाचार्य

हमारा निवास स्थान बंगाल के मेदिनीपुर जिले के खुणबेडीया गाँव में था। यह गाँव कामारपुकुर से बीस मील दूर था। मेरे पिताजी और श्रीठाकुर (श्रीरामकृष्ण देव) बचपन से ही एक-दूसरे को पहचानते थे। उनमें विशेष मित्रता थी। पिताजी साल में दो-तीन बार कलकत्ता आते थे। गाँव लौटते समय वे ठाकुर से मिलने जाते थे। कामारपुकुर में उनका कुछ सन्देश पहुचाते और ठाकुर का कुशल समाचार भी बताते थे। जब मैं आठ बरस का था, तब मेरे पिताजी मुझे दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में दर्शन के लिए ले गए। सम्भवत: तब ग्रीष्म ऋतु थी। एक दिन सुबह उन्होंने मुझसे कहा, ''चलो, तुम्हें एक जगह ले चलता हूँ। वहाँ तुम्हें जगन्माता काली का मंदिर और जीवित भगवान के दर्शन होंगे।

दक्षिणेश्वर में जगन्माता का दर्शन करने के बाद पिताजी मुझे ठाकुर के पास ले गए। ठाकुर तब अपने कक्ष में नहीं थे। एक व्यक्ति ने बताया कि वे पंचवटी में हैं। हम उधर गए। संभवत: वे दो-तीन युवकों के साथ गंगा-दर्शन कर रहे थे। पिताजी को देखकर ठाकुर बहुत प्रसन्न हुए। एक-दूसरे ने कुशल प्रश्न पूछा। पिताजी ने ठाकुर को साष्टांग प्रणाम किया। उनकी चरण-रज अपने और मेरे माथे पर लगायी। मुझे कहा, ''मैंने तुम्हें कहा था कि जीवित भगवान के दर्शन कराऊँगा ! देखो, भगवान तुम्हारे सामने हैं।'' उन्होंने मेरा मस्तक ठाकुर के चरणों में रखा। मैंने भी उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ठाकुर ने मेरे सिर पर हाथ रखते हुए कहा, ''उठो, बेटा उठो !'' मेरे उठकर खड़े होने पर उन्होंने कहा, ''तुम दीर्घायु तथा बड़े पंडित होओगे।'' उनके चरणों में नतमस्तक होने से लेकर आशीर्वाद देने तक मैं अन्य भाव में था। मेरी बाह्य संज्ञा लुप्त हो गयी। किन्तु उनकी आशीर्वाणी मेरे कानों में प्रवेश कर गयी थी। बहुत समय तक वह ध्वनि मेरे कानों में गूँजती रही। उन्होंने हमें खाने के लिए मिठाई दी। हमने गंगा के पास जाकर मिठाई खायी और गंगाजल पान किया। उस दिन हम अधिक समय तक रुक नहीं सके थे, इसलिए ठाकुर को दु:ख हुआ। हम जब मंदिर प्रांगण के बाहर आये, तो मैंने पिताजी से पूछा, ''ठाकुर आपके पिता हैं या काका?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''बेटा, वे सभी के पिता हैं – जैसे चन्दा मामा सबके मामा हैं ! जगतकल्याण के लिए जगत्पिता स्वयं भगवान श्रीरामकृष्ण देव के रूप में बैकुण्ठ से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं।''

श्रीठाकुर का पार्थिव शरीर में वही मेरा प्रथम और अन्तिम दर्शन था। तब मेरी आयु बहुत कम थी। फिर भी आज मुझे उनका चेहरा याद आता है। उनका कद ऊँचा था। शरीर सुगठित और सौम्य कान्ति का था। उनका मुखमंडल मन्द स्मित से उज्ज्वल था। दिखने में वे गौर वर्ण नहीं थे, पर त्वचा चमकदार थी। मेरे पिताजी कहते थे, ''ठाकुर के शरीर की कान्ति सुवर्णमय थी। कठोर साधना से उनकी देह क्षीण हो गयी थी और उज्ज्वल वर्ण भी मलिन हो गया था।''

शत-शत जन्मों के सुकृतों के फलस्वरूप मुझे एक बार

ठाकुर के दर्शन हुए थे। पर उसी से में धन्य हो गया। एक-डेढ़ साल बाद जैसे मैंने उन्हें देखा था, वैसे ही स्वप्न में आविर्भूत होकर उन्होंने मुझे कहा, "अरे बेटा, तुम ठीक हो तो ! ये देखो मैं वापस जा रहा हूँ।" यह सुनकर मेरा शरीर रोमांचित हो गया। बाद में पता चला कि उसी रात ठाकुर की महासमाधि हुई थी।

श्रीठाकुर हर डेढ़-दो साल के अन्तराल में मुझे स्वप्न में दर्शन देते थे। वे कहते थे, "बेटा ठीक तो हो !" स्वप्न में दर्शन पाकर मेरा शरीर रोमांचित होता था और मैं उठकर बैठ जाता था। अनेक वर्ष ऐसे ही बीत गए। मैंने संस्कृत पंडित और उत्कृष्ट वक्ता के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली थी। तब मेरी उम्र पचास साल की होगी। मेरी संस्कृत पाठशाला में १०-१५ विद्यार्थी निवास कर शास्त्र-अध्ययन करते थे। एक बार सारे विद्यार्थी परीक्षा देकर अपने घर गए थे। मैं वहीं पुस्तकालय की रखवाली करते हुए सो रहा था। रात में करीब दो बजे ठाकुर स्वप्न में आये और दर्शन देकर कहा, "क्यों रे पंडित, ठीक तो हो? आज अच्छे से सुनो।" ऐसा कह कर उन्होंने एक संस्कृत श्लोक का उच्चारण किया। वह श्लोक इस प्रकार है –

मल्लीलां विलिख त्वं भो देवभाषा युतां सुधीः ।
त्वामहं संवदिष्यामि मा भैषीः पंडितो भवान् ।।

(अर्थात् तू मेरी लीला का वर्णन देवभाषा संस्कृत में कर, मैं तुम्हें मार्गदर्शन करुँगा। घबराओ मत। तुम अच्छे पंडित हो।)

उन्होंने मुझे यह श्लोक तीन बार उनके साथ बोलने को कहा और अन्तर्धान हो गए। मुझे वह श्लोक याद हो गया। मैंने नींद से जागकर दिया जलाया और कागज पर वह श्लोक लिखकर रखा। फिर मैं सोचने लगा कि ठाकुर ने तो मुझे कहा, "अरे पंडित, तू संस्कृत भाषा में मेरा चरित्र लिख" पर मैं तो उनके बारे में कुछ भी नहीं जानता। बचपन में एक ही बार उन्हें देखा था। मैं उनसे मन-ही-मन बात करने लगा – "ठाकुर, आज इतने साल मैंने कभी भी आपकी लीला के विषय में चिंतन नहीं किया, मुझे कुछ भी पता नहीं, कहीं गया नहीं, कुछ देखा नहीं, तब कैसे आपका चरित्र लिखूँ?" अशरीरी वाणी ने उत्तर दिया, "तुम तो पण्डित हो। कालिदास जैसे पण्डितों ने पर्वत, आकाश, हवा, इतना ही नहीं, अपितु पशु-पक्षियों के जीवन का वर्णन किया हैं, मैं तो एक मनुष्य हूँ। मेरे जीवन का वर्णन तुम निश्चित ही कर सकोगे। तुम डरो मत, चिन्ता मत करो, मुझे जाननेवाले बहुत लोग दक्षिणेश्वर तथा कामारपुकुर में हैं। बेलूड़ मठ में रहनेवाली मेरी संतानों से तुम्हें जानकारी मिल जायेगी। मैं भी इसी प्रकार घटनाओं तथा सत्यता सम्बन्धी शंकाओं का समाधान करुँगा। मेरी आँखों से अश्रु बहने लगे। मैंने कहा, "हे प्रभो, आपकी मेरे ऊपर अपार करुणा है! अनन्त दया है! मेरे जैसे संसारी, दीन-दरिद्र, अधम मनुष्य पर आपने असीम कृपा की है। तदुपरान्त दक्षिणेश्वर और कामारपुकुर के लोगों से कुछ सत्य घटनाओं का संकलन किया। किन्तु संसार और अध्यापन कार्य में व्यस्त रहता था। ठाकुर की संतानों से भी अधिक भेंट न हो सकी।

किन्तु स्वामी विवेकानन्द जी से उनके विदेश से वापस आने के बाद मिला था। स्वामीजी के स्कोटिश चर्च कॉलेज के एक अध्यापक मुझे बहुत स्नेह करते थे। वे बंगाली ईसाई थे। वे स्वामीजी को भी बहुत स्नेह करते थे तथा उनके सम्बन्ध में अध्यापक महाशय की अति उच्च धारणा थी। मेधावी छात्र नरेन्द्रनाथ ने एक पुजारी का शिष्यत्व ग्रहण किया है, इस समाचार को सुनकर वे अत्यन्त निराश हुए थे। एक बार उन्होंने मुझे स्वामीजी और ठाकुर के संस्मरण बताये – स्वामीजी (नरेन्द्रनाथ) संन्यास लेने के बाद अध्यापक जी से मिलने गए। तब अध्यापकजी ने स्वामीजी से कहा, "अच्छा नरेन ! तुमने यह क्या किया ! अन्ततः तुमने एक पागल पुजारी के पास अपना सिर मुँड़वाया ! यह भी सुनने में आया है कि तुम लोग उस पुजारी को जगत-कल्याण हेतु अवतीर्ण भगवान मानते हो? तुमने इन गाँजा पीनेवालों की बातों पर विश्वास कर लिया!" स्वामीजी ने उन्हें शान्त भाव से कहा, "सर, आपने ठीक ही सुना है, मैं स्वयं उन्हें ईश्वर मानता हूँ। वे जगत् के कल्याण हेतु धरती पर अवतीर्ण हुए हैं, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पहले मैं भी आपकी तरह इन बातों को गाँजा पीनेवालों की उटपटांग बातें समझता था। श्रीरामकृष्ण देव के सामने यह सब बोलता भी था। पर वे एक बालक थे। मेरी बातें सुनकर छोटे बालक के समान हँसते और कहते, 'तुम्हें क्या मैं विश्वास करने के लिए कहता हूँ?' किन्तु सर, अन्त में मुझे विश्वास करना ही पड़ा। उन्होंने मुझे दिखा दिया कि स्वयं भगवान ही श्रीरामकृष्ण देव के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। उन्होंने मुझे एक बार रामरूप में तथा एक बार कृष्ण रूप में दर्शन दिया है तथा राम और कृष्ण उनके शरीर में विलीन होते हुए दर्शन कराये हैं, यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है। इसमें कोई आभास या भ्रम नहीं था। मैंने उन्हें अनेक प्रकार से देखा है और निश्चित जानता हूँ

कि वे स्वयं भगवान हैं।'' अध्यापकजी ने स्वामीजी की यह बात बताकर मुझे कहा, ''नरेन्द्रनाथ को मैं अच्छे से जानता था, वह जादूगरी पर विश्वास नहीं करेगा। उस दिन समझ में आया कि नरेन ने अंधविश्वास से ठाकुर को भगवान के रूप में स्वीकार नहीं किया था। बाद में ठाकुर के जीवन से यह प्रमाणित हो गया कि वे असाधारण थे।''

इस प्रकार थोड़ी ही घटनाओं को जान सका था। अनेक बार दर्शन देकर ठाकुर मुझे चरित्र लिखने को कहते। पर मैं ठाकुर के आदेश को एक स्वप्न ही समझता था। ऐसे वर्षों बीत गए और मैंने कुछ भी नहीं किया। जब मेरी उम्र ८० साल की थी, तब ठाकुर ने फिर से उनका जीवन संस्कृत काव्य में लिखने का आदेश दिया। मैंने मेरे भग्न स्वास्थ्य और अधिक उम्र का बहाना बताया। किन्तु उन्होंने कहा, ''तुम बिलकुल चिंता मत करो। तुम केवल लिखना प्रारम्भ करो।'' विश्वास करना कठिन है, पर उनके आशीर्वाद से ८४ साल की उम्र में मैंने 'श्रीरामकृष्णभागवतम्' नामक महाकाव्य लिखकर पूर्ण किया। उन्होंने ही काव्य लिखते समय मेरे संदेहों का निराकरण किया और आवश्यकता होने पर निर्देश भी दिये। मैं एक दरिद्र ब्राह्मण, कैसे ग्रन्थ को प्रकाशित करता? पर ठाकुर ने वह मार्ग भी प्रशस्त कर दिया। भारत सरकार ने इस महाकाव्य के प्रकाशन के लिए अनुदान दिया।

श्रीरामकृष्ण देव का चरित्र सबको ज्ञात है। मैंने श्रीरामकृष्णभागवतम् ग्रन्थ को स्वामी सारदानन्द जी द्वारा लिखित श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग ग्रन्थ को प्रमुख आधार बनाकर लिखा। एक-दो घटनाएँ मुझे प्रामाणिक रूप में मिली हैं, जिसे मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ।

कामारपुकुर के धनाढ्य जमींदार श्री लाहाबाबू के घर श्राद्ध के निमित्त धर्मसभा का आयोजन था। सभा में अनेक गणमान्य पंडित उपस्थित थे। सभा में अचानक एक ब्राह्मण युवक आकर खड़ा हुआ। उसने सारे पंडितों को उद्देश्य कर कहा, 'मुझे बीस साल से पेट दर्द की पीड़ा है। मैंने सब प्रकार की औषधि-चिकित्सा की, पर कोई लाभ नहीं हुआ। इसलिए बाबा तारकनाथ के चरणों में धरना देकर बैठ गया। बाबा तारकनाथ जी ने रात को सपने में दर्शन दिये और कहा, 'तुम्हारें गाँव के बाहर एक गोमांस भक्षक चांडाल रहता है। तुम स्नानादि करके भक्तिभाव से चांडाल को प्रणाम कर उसका चरणामृत ग्रहण करो तथा सादर उसका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करो। इसी से तुम्हारा रोग दूर होगा।' किन्तु हे पण्डितगण, ऐसा आचरण करने पर समाज मुझे बहिष्कृत करेगा। अब आप लोग ही बतायें कि मैं कैसे बाबा तारकनाथ की आज्ञा का पालन करूँ, जिससे मेरा रोग भी दूर हो जाये और मुझे बहिष्कृत भी न होना पड़े।''

पंडितों का इस विषय पर गहन तर्क आरम्भ हुआ। इस सभा में बालक गदाधर भी था। उसने पंडितों के सामने आकर विनम्रता से कहा, ''आप अगर अनुमति दें, तो मैं कुछ कहना चाहता हूँ।'' पण्डितों से अनुमति मिलने पर बालक गदाधर ने कहा, ''अगर वह व्यक्ति उस चांडाल को लेकर पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथ पुरी जाए और उसे भगवान जगन्नाथ का प्रसाद देकर उसका उच्छिष्ट अन्नप्रसाद ग्रहण करे, तो बाबा तारकनाथ के आदेश का पालन होगा एवं जाति बहिष्कृत भी न होना पड़ेगा।'' बालक का विचार सुनकर पंडितगण अचम्भित हो गए। बालक गदाधर को आशीर्वाद देकर उन्होंने कहा, ''बेटा, तुम असाधारण व्यक्ति हो ! तुममें हम जगद्गुरु के लक्षण देख रहे हैं। भविष्य में यह प्रमाणित होगा।'' श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग में इस घटना का वर्णन है, पर प्रश्न का उल्लेख नहीं है। ठाकुर ने मुझे स्वप्न में जो घटनायें बताई थीं, उनमें से एक बताता हूँ। ठाकुर ने स्वप्न में एक दिन कहा, ''अरे पंडित, तुम तो जानते हो कि मैं एक मूर्ख (अशिक्षित) व्यक्ति हूँ, पर बाहर से दिखनेवाली मूर्खता मेरा छद्मवेश है। एक बार मैंने युवा भक्त बैकुण्ठनाथ संन्याल से कहा, 'तुम रामायण से शबरी उपाख्यान पढ़ो। बैकुण्ठ ने मूल संस्कृत रामायण न पढ़कर बंगाली अनुवाद पढ़ना शुरू किया। मैंने उससे कहा, 'तुम मूल संस्कृत पाठ पढ़ो।' यह सुनकर बैकुण्ठ आश्चर्यचकित होकर मुझे निहारने लगा। उसे लगा कि मुझ जैसे निरक्षर व्यक्ति को वाल्मीकि का संस्कृत रामायण कैसे समझ में आएगा? तब मैंने बैकुण्ठ से कहा, 'रामायण में जिनकी कथा वर्णित है, वह तो मुझमें है। इसीलिए रामायण में जो लिखा है, वह सब मुझे ज्ञात है। उसके बाद बैकुण्ठ को रामायण के अरण्यकाण्ड के ७४ अध्याय के मूल श्लोक सुनाये। अब पंडित तुम भी सुनो।' ठाकुर ने मुझे वे सारे श्लोक स्पष्ट उच्चारण और लयबद्धता के साथ सुनाये। उनके श्रीमुख से संस्कृत के श्लोक इतने अपूर्व भाव से सुनकर मैं स्तम्भित हो गया। तदुपरान्त ठाकुर ने कहा, ''बैकुंठनाथ तो मेरे मुख से श्लोक सुनकर (छिपकली के मुख में चूना देने के समान) स्तब्ध हो गया था ! उसके मुख से शब्द ही नहीं निकल रहे थे ! क्योंकि वह प्रत्यक्ष प्रभु श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और शबरी को देख रहा था। थोड़ी देर बाद प्रकृतिस्थ होकर मुझे

प्रणाम कर फिर बैकुण्ठ मूल संस्कृत रामायण का पाठ करने लगा। पंडित तुम भी देखो, रामचन्द्र रूप में मैंने शबरी पर कैसे कृपा की !' मुझे भी उन्होंने कृपापूर्वक सब दिखाया।'

समाज के विद्वान् तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने इस श्रीश्रीरामकृष्णभागवतम् महाकाव्य की सराहना की है। इसमें तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गाँधी और रामकृष्ण संघ के महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज प्रमुख हैं।

श्रीश्रीरामकृष्णभागवतम् महाकाव्य के विषय में स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज लिखते हैं, ''संस्कृत भाषा में लिखा हुआ श्रीरामकृष्णदेव का चरित्र बहुत मधुर है और समझने में सुगम है। इस महाकाव्य से एक महापुरुष के जीवन का परिचय तथा संस्कृत भाषा का प्रचार, ये दोनों उद्देश्य पूर्ण होते हैं।''

आज मेरी दृढ़ धारणा है कि उनकी कृपाकटाक्ष से गूंगा व्यक्ति बोल सकता है और पंगु हिमालय चढ़ सकता है। वे नरदेह में साक्षात् भगवान थे। उनके स्पर्श ने मुझे अनन्त सौभाग्य का अधिकारी बनाया।

पंडित रमेन्द्र सुन्दर भट्टाचार्य प्रणीत श्रीरामकृष्ण-भागवतम् महाकाव्य से सम्बन्धित कुछ अन्य बातें

पंडित रामेन्द्र सुन्दर भट्टाचार्य ने अपने ग्रन्थ में त्रेतायुग तथा द्वापरयुग में भगवान के जो लीला सहचर थे, वे कलियुग में श्रीरामकृष्ण अवतार में कौन कौन थे, इसका बहुत सुन्दर वर्णन किया है। श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों ही गदाधर के रूप में अवतीर्ण हुए। लेखक ने अवतारों के कार्यों का तुलनात्मक विश्लेषण निपुणता से किया है। जैसे - महाबली हनुमान ने प्रभु श्रीरामचन्द्र का कार्य सम्पादन करने के लिए समुद्रलंघन किया। उसी प्रकार नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) ने समुद्र पार कर पाश्चात्य जगत के लोगों की आध्यात्मिक तृषा शमन करने हेतु श्रीरामकृष्ण देव की अमृतवाणी का प्रचार किया। श्रीराम ने रावण-वध के लिए समुद्र पार कराने हेतु सेतु निर्माण किया। श्रीरामकृष्ण देव ने संसाररूपी सागर पार कर शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए उपदेशामृत सेतु बनाया आदि। इस महाकाव्य में ऐसी कुछ घटनाओं का वर्णन है, जो हमने कभी सुनी नहीं, उनका निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा।

लेखक लिखते हैं, ''एक बार दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में रानी रासमणि का आगमन हुआ। श्रीरामकृष्ण देव काली मंदिर में जगन्माता के सामने भजन गा रहे थे। भजन सुनकर रानी रासमणि बहुत आनन्दित हुईं। उन्होंने ठाकुर को और एक भजन गाने के लिए कहा – ठाकुर ने भजन गाना प्रारम्भ किया। भजन का भावार्थ इस प्रकार था – 'हे जगन्माते, तुम सर्वदा शिव के वक्षस्थल पर पैर रखकर खड़ी हो। तुम्हें इसकी लज्जा नहीं लगती? तुम जिह्वा बाहर निकालकर लज्जा का भाव प्रदर्शित तो करती हो ! पर क्या तुम्हारी माँ भी इसी प्रकार तुम्हारे पिताजी की छाती पर खड़ी हैं?' रानी भजन तो सुन रही थी, पर उसका मन सांसारिक विचारों में था। उससे ठाकुर का कंठ अचानक अवरुद्ध हो गया और उनका भजन गाना बंद हो गया। उन्होंने रानी के गाल पर जोर से थप्पड़ मारा और कहा, 'देवी के मंदिर में भी मुकदमें के बारे में सोच रही हो !' इस घटना का वर्णन अनेक पुस्तकों में है, पर भजन का उल्लेख इसी महाकाव्य में मिलता है।

एक बार रविवार को बलराम बोस के घर ठाकुर से मिलने अनेक लोग आये थे। उनमें ढाका विश्वविद्यालय के एक अध्यापक श्री नित्यगोपाल गोस्वामी भी थे। उन्होंने ठाकुर से कहा, ''हम देवताओं को अलंकारों से विभूषित देखते हैं। आपके बारे में ऐसा कुछ भी नहीं है ! आप की उंगलियों में एक चाँदी की अंगूठी तक नहीं है ! मैंने आपके लिए एक छोटा-सा गहना लाया है। कृपया इसे स्वीकार करें।'' ठाकुर ने उनसे कहा, ''आपने जो कहा वह सही है। पहले के तीन युगों में भगवान धरती पर अलंकारों से विभूषित होकर अवतीर्ण हुए थे। सत्ययुग में भगवान पद्मासन पर उपविष्ट होकर मुकुट-कुंडल आदि आभूषणों से विभूषित हुए थे। त्रेतायुग में भगवान श्रीराम मुकुट आदि धारण कर अयोध्या के राजा बने। द्वापर युग में भगवान श्रीकृष्ण ने पीताम्बर परिधान कर शंख, चक्र, गदा ,पद्म, कौस्तुभ आदि धारण किया था। कलियुग में भगवान नवद्वीप में श्रीचैतन्य देव के रूप में आविर्भूत हुए। उन्होंने स्वर्ण, रजत, मणि आदि रत्नालंकारों का त्याग कर संन्यास ग्रहण किया। चैतन्यदेव ने त्याग धर्म दिखाया। मैंने भी उन्हीं की तरह कामिनी-कांचन का त्याग कर शाश्वत शान्ति की उपलब्धि की है। धातु का स्पर्श मुझे तप्त लोहे के स्पर्श के समान यातना देता है।''

ऐसी अलौकिक घटनाओं तथा मार्मिक स्पष्टीकरणों से परिपूर्ण यह श्रीश्रीरामकृष्णभागवतम् संस्कृत महाकाव्य निश्चय ही हम सबकी श्रद्धा और भक्ति वर्धित करेगा। इस ग्रंथ को ऐतिहासिक दृष्टि से न देखते हुए इसका भक्तिपूर्ण अन्त:करण से अवलोकन करने से निश्चय ही यह हमारे लिए प्रेरणादायक होगा। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२६)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

१२ अक्तूबर, मिस मैक्लाउड को

बृहस्पतिवार की सुबह। प्रिय युम! एक वर्ष पूर्व – एक वर्ष पूर्व! बारामुला – जगदम्बा – और विदा!

तुम्हारे चले जाने के बाद से हमारे मधुमय आचार्यदेव – उनके लिये कौन-सी दिव्य आख्या यथेष्ट हो सकती है, जो एक मनमौजी बालक के समान रहे? – वे धूम्रपान भूल गये हैं और कहते हैं – यह 'ईश्वरीय पागलपन चला जाय, रामकृष्ण परमहंस शैतान से आविष्ट एक पागल थे, उन्होंने मुझे तोड़कर चकनाचूर कर दिया है।' वे सर्वदा प्रिय श्रीमती बुल के प्रति विद्रोह कर रहे हैं। और जैसा कि तुम जानती हो, इन सबके माध्यम से उनकी आन्तरिक दिव्यता की झलकियाँ प्रकट हो उठती हैं।

पिछली रात सहसा वे दस मिनट तक मीराबाई के विषय में बोलते रहे – उनके पति ने प्रस्ताव रखा कि यदि वे बाहर जाना बन्द कर दें, तो वे उनके लिये वृन्दावन में एक विशाल मन्दिर बनवा देंगे। मैंने बुद्धू की भाँति पूछा, "तो फिर उन्होंने स्वीकार क्यों नहीं किया?" वे उद्दीप्त होकर बोल उठे, "वे क्या इस पंक में रहने वाली जीव थीं? सम्मान तथा राज्य की मर्यादा के विषय में उनके पति की तुच्छ युक्तियों को समझ पाना क्या उनके लिये सम्भव था? उस व्यक्ति के लिये स्वयं को उनके पति के रूप में प्रस्तुत करना क्या स्थूल और नितान्त पाशविक नहीं था? है कि नहीं?"

१३ अक्तूबर, पूर्वाह्न में ग्यारह बजे। स्वामीजी डेढ़ घण्टे से टहल रहे थे और मुझे मन को बहिर्मुखी बनानेवाली दिखावटी विनम्रता, 'कितना प्यारा', 'कितना सुन्दर' आदि उद्‌गारों के बारे में सावधान कर रहे थे। बीच-बीच में वे कह उठते, "हिमालय में चली जाओ। बिना किसी भावुकता के अपने स्वरूप की अनुभूति कर लो; और जब तुम अपनी आत्मा को जान लोगी, तब तुम उल्का के समान दुनिया पर टूट पड़ोगी। मुझे ऐसे लोगों में विश्वास नहीं, जो पूछते हैं, क्या कोई मेरे प्रचार पर ध्यान देगा? जिसके पास कुछ कहने को है, जगत् कभी भी उसके उपदेशों को सुनने से इनकार नहीं कर सकता। अपनी स्वयं की शक्ति पर निर्भर होकर खड़ी हो जाओ। क्या तुम ऐसा कर सकती हो? तो फिर हिमालय में चली जाओ और वहीं सीखो।" इसके बाद वे शंकराचार्य के वैराग्य-बोधक 'चर्पटपंजरिका' के १६ श्लोकों की आवृत्ति करने लगे, जिसके प्रत्येक के अन्त में आता था – 'भज गोविन्दं मूढमते!' (इसलिए हे मूढ़मति, ईश्वर की आराधना करो।)

कभी-कभी वे उसे बदलकर कहने लगे – इसलिए हे मूढ़मति मार्गट! समाज तथा घर-गृहस्थी के क्षुद्र सम्बन्धों के परे उठना; इन्द्रियों के सतत आमंत्रण को नकारते हुए अपनी अन्तरात्मा को संयमित रखना; शरत् काल के वृक्षों को देखकर होनेवाले आनन्द को भी आरामदायक बिस्तर पर शयन तथा सुस्वादु भोजन के समान ही भोग-सुख समझना; लोगों की तुच्छ प्रशंसा तथा निन्दा से घृणा करना – वे पुन: पुन: इन्हीं आदर्शों को हमारे सम्मुख रखते। वे बारम्बार कहते, "तितिक्षा का अभ्यास करो।" तितिक्षा अर्थात् देह के कष्टों का प्रतिकार किए बिना, उन पर ध्यान दिए बिना, उन्हें सहन करना। वे उस संन्यासी का उदाहरण देते, जिनकी उँगलियाँ कोढ़ से सड़ रही थीं। उनके घाव से एक कीड़ा जमीन पर गिर गया था। उन्होंने धीरे-से झुककर उसे उठाया और फिर उसी घाव पर रख दिया।

फिर वे दु:खों से प्रेम तथा मृत्यु का आलिंगन करने की बात कहते। ...

कल वे शिव के बारे में बोल रहे थे – 'तुम्हारा जीवन केवल आत्म-चिन्तन के लिए ही हो। एक मुक्तात्मा के लिए ध्यान तक एक बन्धन प्रतीत होता है, परन्तु परमेश्वर शिव जगत् के कल्याण हेतु ध्यान में तन्मय रहते हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि इन महान आत्माओं की प्रार्थना तथा ध्यान-धारणा के अभाव में जगत् का तत्काल ध्वंस हो जाएगा। (अर्थात् अन्य लोगों को स्वयं को अभिव्यक्त करने का तथा

मुक्त होने का अवसर ही नहीं मिलेगा।) क्योंकि ध्यान ही वह महानतम तथा प्रत्यक्ष सेवा है, जो दूसरों के लिए की जा सकती है।

वे बता रहे थे कि कैसे हिमालय पर हिमराशि और बीच-बीच में वनों की हरियाली फैली है। वे कालिदास का उद्धरण देते हुए बोले, ''महादेव की देह पर प्रकृति मानो निरन्तर सती हो रही हैं।'' क्या यह अद्‌भुत नहीं है? – निरन्तर उन्हीं के लिये अपना जीवन न्यौछावर करती हुई! और एक मेघ के विषय में एक अन्य पंक्ति थी – ''अस्तमान चन्द्र के समान वे पश्चिमी क्षितिज के चरणों में पड़ी हैं।''

१८ अक्तूबर, मिस मैक्लाउड को

शुक्रवार को दोपहर में भोजन के समय स्वामीजी श्रीरामकृष्ण के बारे में बोलने लगे। उन्होंने स्वयं को इस बात के लिए धिक्कारा कि उन दिनों पाश्चात्य प्रभाव ने उनके मन पर ऐसा अधिकार जमा लिया था और उसे ऐसा विषाक्त कर दिया था कि वे सर्वदा यही देखते और पूछते रहते थे कि रामकृष्ण सचमुच ही 'पवित्र' हैं या नहीं। छह वर्षों के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये व्यक्ति 'पवित्र' ही नहीं, अपितु पवित्रता की प्रतिमूर्ति हो चुके हैं। रामकृष्ण आनन्द तथा मौज से परिपूर्ण थे, जबकि स्वामीजी की दृष्टि में पवित्रता की कल्पना इससे बिलकुल भिन्न हुआ करती थी! ...

हम लोग आनन्द लेने के लिए धर्माचार्य के रूप में स्वामीजी की बेपरवाही और चित्रकार के रूप में उनके अभिमान के विषय में उन्हें चिढ़ाने लगे। इस पर वे सहसा बोल उठे, ''देखो, एक चीज है, जिसे प्रेम (love) कहते हैं और एक अन्य चीज है जिसे अभिन्नता (union) कहते हैं। यह अभिन्नता प्रेम से बड़ी है।

''मैं धर्म से प्रेम नहीं करता; मैं इससे अभिन्न – एकाकार हो गया हूँ। यह मेरा जीवन है; कोई व्यक्ति उस चीज से प्रेम नहीं करता, जिसमें उसने अपना पूरा जीवन खपा दिया हो, जिसमें उसने कोई वास्तविक उपलब्धि हासिल कर ली हो। हम उसी चीज से प्रेम करते हैं, जो तब तक हमसे अभिन्न नहीं हो सकी है। तुम्हारे पति (ओली बुल के पति) सर्वदा संगीत का अध्ययन करते रहे और उन्हें संगीत से प्रेम नहीं था; उनका प्रेम तो अभियांत्रिकी से था और उस विषय में वे अपेक्षाकृत कम जानते थे। भक्ति तथा ज्ञान के बीच यही भेद है; और इसीलिए ज्ञान का स्थान भक्ति के ऊपर है।'' ...

दोपहर के भोजन के पूर्व वे मुझे साथ लेकर श्रीमती वागन से पहली बार मिलने गये; लौटते समय वे पत्नी-पूजा के विषय में फट पड़े। पत्नीत्व की अपेक्षा मातृत्व का स्थान अति उच्च है। ''हम प्राच्य लोग भी दो-एक बातें जानते हैं। विवाह एक महान तपस्या के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।''

इसके बाद कौन-सी बात कहूँ? रविवार की शाम को कुमारी स्टम ने यहाँ अन्तिम बार भोजन किया। हम लोग उच्च स्वर में शापेनहावर के 'नारी' विषयक विचार पढ़ रहे थे। मैं कुमारी स्टम को उनके निवास तक पहुँचाने गयी; स्वामीजी तथा तुरीयानन्द हमारे साथ पहरेदार के रूप में जा रहे थे। उन्हें छोड़कर लौटते समय मैंने मृदु स्वर में कहा – ''गहरी रात के समय मैं अपनी पगध्वनि की आहट तक को नहीं सह पाती।'' अद्‌भुत चाँदनी से आलोकित रात थी। हम लोग वृक्षों की छाया के नीचे से होकर चुपचाप लौट रहे थे – हल्की-सी आवाज भी पवित्र निस्तब्धता को भंग कर सकती थी। स्वामीजी बोले, ''भारत में जब कोई बाघ रात के समय अपने शिकार के पीछे चलता है, तो उसके पंजे या पूँछ से यदि जरा भी आवाज निकलती है, तो वह उसे इतना काटता है कि उससे खून निकल आता है।'' फिर उन्होंने बताया कि पाश्चात्य महिलाओं को सीखना होगा कि किस प्रकार मौन रहकर सौन्दर्य का रसास्वादन किया जाय और आनेवाले समय के लिए उसे मन में संरक्षित रखा जाय।

श्रीमती वागन के पाठ में से नचिकेता के उपनिषद की एक पंक्ति मैंने तुम्हारे लिये सुरक्षित रख ली है – ''जब सभी इच्छाएँ चली जाती हैं और हृदय की सभी गाँठें टूट जाती हैं, तब व्यक्ति अमरत्व प्राप्त कर लेता है।'' **(क्रमशः)**

दियासलाई की एक लकड़ी के जलते ही हजारों साल का अन्धकार भी उसी क्षण दूर हो जाता है, वैसे ही एक बार ईश्वर की कृपादृष्टि के पड़ते ही जीव के जन्म-जन्मान्तर के पापपुंज तत्काल दूर हो जाते हैं।

– श्रीरामकृष्ण देव

स्वामी विवेकानन्द का चमत्कारी व्यक्तित्व

प्रो. (डॉ.) उषा वर्मा

सेवानिवृत्त आचार्य एवं अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

स्वामी विवेकानन्द को युवाओं से बहुत लगाव था, उन पर बहुत विश्वास था, उनसे बहुत आशाएँ थीं। उन्होंने इस युवा-वर्ग को सदैव शक्ति-पुंज के रूप में देखा। स्वामीजी चाहे जिस किसी से बात कर रहे हों, चाहे वे जिसे भी सम्बोधित क्यों न कर रहे हों, किन्तु सकारात्मक क्रान्ति के लिए उन्होंने सदैव युवा वर्ग की ओर निहारा है, उसे ही प्रबोधित किया है, उनकी खामियों को रेखांकित किया है और उनके सुधार की दिशा में दृढ़ आत्मविश्वास के साथ प्रयाण करने की सलाह दी है और उसी के सबल कन्धों पर भारत के नवनिर्माण का दायित्व डाला है। मात्र साढ़े ३९ (१८६३-१९०२) वर्ष की अल्प जीवन अवधि में उन्होंने अपने शब्द और अपने आचरण से युवा वर्ग को जिस तरह उद्‌बोधित किया, जागृत किया है, सहसा विश्वास नहीं होता कि कोई ऐसा चमत्कारी व्यक्तित्व भी हो सकता है। अपने अन्तिम दिनों में स्वामी विवेकानन्द को स्वयं से यह कहते हुए सुना गया था कि ''यदि कोई दूसरा विवेकानन्द होता, तो वही समझ सकता था कि इस विवेकानन्द ने क्या किया है।''

स्वामी विवेकानन्द का बचपन भी अद्भुत था। वे बाल्यावस्था से ही तीक्ष्ण बुद्धि के थे। चंचलता पराकाष्ठा पर थी। पर ध्यान और एकाग्रता की क्षमता भी अद्‌भुत-अपूर्व थी। कलकत्ता के कुलीन परिवार में १२ जनवरी, १८६३ को उनका जन्म हुआ था। नाम रखा गया था नरेन्द्रनाथ दत्त। उनका सुसंस्कृत-धार्मिक परिवेश में पालन-पोषण हुआ। स्वस्थ शरीर और दृढ़ उत्तम चरित्र का निर्माण हुआ। युवावस्था के आते-आते वे युवा वर्ग के प्रतिनिधि हो गये। शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच लोकप्रिय हो गये। किन्तु, संसार और ईश्वर को लेकर उनके भीतर-भीतर संघर्ष लगातार चलता रहता था। इसी क्रम में वे तत्कालीन ब्रह्म समाज के सम्पर्क में आये और बाद में उनकी भेंट दक्षिणेश्वर के महान सन्त श्रीरामकृष्ण परमहंस से हुई। यह भेंट जीवन की मंजिल बन गयी। यह भेंट भावी दशा और दिशा के लिये गगोत्री सिद्ध हुई। श्रीरामकृष्ण की सरलता, सहजता, ईश्वर में अखंड आस्था और सभी धर्मों के प्रति प्रत्यक्ष अनुभव के फलस्वरूप निर्मित उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व ने न केवल नरेन्द्रनाथ नाथ दत्त को आकर्षित किया, बल्कि उनको स्वामी विवेकानन्द बनने की दिशा में उन्मुख भी किया। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें दीक्षा दी। योग्य शिष्य ने दीक्षा को सही अर्थ में स्वीकार किया। श्रीरामकृष्ण के देह-त्याग के बाद स्वामी विवेकानन्द ने अपने को सांसारिक जीवन से पूरी तरह अलग कर लिया। उन्होंने पूरे भारतवर्ष का भ्रमण किया। भारत की वर्तमान दशा देखकर वे बहुत आहत हुए। वे भारत की दशा में सकारात्मक सुधार के लिए विकल हो उठे। इसी बीच उन्हें अमेरिका के शिकागो में हो रहे सर्व-धर्म महासभा के आयोजन की सूचना मिली। उनके लिए अलग से कोई निमन्त्रण तो नहीं आया था, किन्तु मद्रास (चेन्नई) के कुछ युवकों के सत्प्रयास, प्रोत्साहन और श्रीमाँ सारदा का आशीर्वाद लेकर वे उस सर्व-धर्म महासभा में भाग लेने के लिये अमेरिका गये। उन्होंने उस महासभा में भारत और सनातन धर्म सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को इस तरह प्रस्तुत किया कि सम्पूर्ण विश्व से आये हुये लोग सनातन धर्म और भारत का लोहा मानने के लिए विवश हो गये। परतन्त्रता के बावजूद स्वामीजी के व्यक्तित्व के कारण भारत को संसार के सामने सिर ऊँचा करने का सुयोग मिला। उसके बाद स्वामीजी की हुंकार से देश-विदेश आन्दोलित हो उठा। भारत को भी अपनी भीतरी शक्ति का अनुभव हुआ। भारतवासियों की तन्द्रा टूटी। स्वतन्त्रता की तड़प बढ़ी। प्यास बढ़ी। उन्हें अपने अतीत पर गर्व होने लगा। अपने वर्तमान की दयनीय दशा के प्रति असंतोष बढ़ता गया।

भारत लौटने पर स्वामी विवेकानन्द ने भारत और सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिये रामकृष्ण भावधारा को आधार बनाकर कलकत्ता में ही १८९७ में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। १९०२ में ४ जुलाई को उन्होंने अपना नश्वर देह त्याग दिया। उन्होंने यह घोषणा की थी – मैं मरणोपरान्त भी अपना काम तब तक करता रहूँगा, जब तक एक-एक व्यक्ति को यह अनुभव न हो जाये कि वह शुद्ध-प्रबुद्ध-अखण्ड-अनन्त आत्मा है, अव्यक्त ब्रह्म है। मानव को शिक्षा से, अपने आचरण से, अपनी साधना से अपने भीतर के ब्रह्म को उजागर करना है। नर से नारायण बनना है। उन्होंने

व्यावहारिक वेदान्त को अपने जीवन में उतारा और सम्पूर्ण मानवता को उसे जीवन में उतारने की प्रेरणा दी। वे कहते थे कि मनुष्य, केवल मनुष्य ही हमें चाहिए। फिर हमें वह सब मिल जायेगा, जो अभीष्ट है। हमें चाहिए केवल दृढ़ तेजस्वी, आत्मविश्वासी तरुण, ठीक-ठीक सच्चे हृदयवाले युवक। यदि सौ भी ऐसे युवक हमें मिल जायें, तो संसार आन्दोलित हो उठेगा, सकारात्मक परिवर्तन हो जायेगा।

इसीलिए स्वामीजी ने मनुष्य-निर्माण की शिक्षा पर बल दिया। स्कूल-कॉलेज की डिग्रियों को ही पर्याप्त नहीं माना। उन्होंने ऐसी शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की, जिससे उत्तम चरित्र बने, मानसिक बल की वृद्धि हो, बुद्धि का विकास हो सके। नैतिक-आध्यात्मिक चेतना विकसित हो। मनुष्य स्वावलम्बी बने और अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

उक्त सभी उपलब्धियों के लिये उन्होंने कुछ चुनिंदा सूत्र बतलाये। उन्होंने उन पर स्वयं चलकर दिखाया और युवा वर्ग को उन पर चलने के लिए उद्बोधित और प्रेरित किया।

स्वामी विवेकानन्द जी ने पहला सूत्र आत्म-विश्वास का दिया। उन्होंने कहा कि सबसे पहले अपने आप पर विश्वास करो। अपनी शारीरिक शक्ति को बढ़ाओ। मन को संयमित करो। इस बात पर शत-प्रतिशत और हृदय से विश्वास करो कि तुम स्वयं अव्यक्त ब्रह्म हो, सर्वशक्तिमान हो, गौरवशाली हो।

स्वामीजी ने दूसरा सूत्र दिया निर्भयता का। भय मनुष्य को निर्बल बना देता है। इसी के कारण मनुष्य में बुराइयाँ आती हैं। इसके कारण ही दुख होता है। निर्भयता के लिये मन की पवित्रता बहुत जरूरी है। यही पवित्रता चरित्र को सही दिशा देती है। यही पवित्रता मानव को सही मनुष्य बनाने की दिशा में उन्मुख करती है। चरित्र अपने आप में बहुत व्यापक शब्द है। इसका एक छोर त्याग से जुड़ता है, तो दूसरा नि:स्वार्थता और प्रेम से भी। जब व्यक्ति त्याग, नि:स्वार्थता, प्रेम, आत्मविश्वास और निर्भयता से जुड़ता है, तब उसमें सेवा-परायणता, सहानुभूति, सत्य-निष्ठा, ईमानदारी, धैर्य, सहनशीलता आदि सद्गुण स्वयं प्रस्फुटित हो जाते हैं और तभी शिवभाव से जीवसेवा सम्भव होती है। श्रीरामकृष्ण ने शिवभाव से जीवसेवा की बात कही थी। स्वामीजी ने इसे युवकों को संजीवनी के रूप में प्रदान किया है। शिवभाव से जीवसेवा में पूरी तन्मयता, पूरे मनोयोग से संलग्न होने पर ही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप निखरता है। यही स्वरूप-निखार मानव जन्म की सार्थकता भी है।

सबमें एक ही परमात्मा का अंश देखनेवाला व्यक्ति ही परिवार, समाज, देश और दुनिया के लिये सही मनुष्य के रूप में आकार ले सकता है, सही मानवीय आचरण कर सकता है और वही सही अर्थ में आध्यात्मिक है। स्वामीजी के अनुसार अध्यात्म भारत की आत्मा है। इसी अध्यात्म के बल पर वह संसार का गुरु बनेगा। उनकी इस अवधारणा पर महर्षि अरविन्द ने यह कह कर मानो मुहर लगा दी थी कि विश्व गुरु होना भारत की नियति है।

स्वामीजी आज भी हमारे बीच अपने विचारों को लेकर उपस्थित हैं। उन्होंने ठीक ही कहा था – मृत्यु के बाद भी, देहावसान के बाद भी मैं अपना काम करता रहूँगा। अब वे सभी युवकों में समाहित हो गये हैं और चाहते हैं कि उनका युवा वर्ग उनके बताये मार्ग पर चले, स्वयं भी उन्नत हो और देश को भी उन्नत करे, विश्व को भी दिशा दे। उन्हें पूरा विश्वास है कि उनके देश का युवा वर्ग उनकी इच्छा की कसौटी पर खरा उतरेगा। अब युवा वर्ग की बारी है उनकी इच्छाओं को विशिष्ट आकार देने की, उनके संदेश को जीवन में उतारने की और अपने देश को दुनिया के मानचित्र पर गौरवशाली स्थान दिलाने की। ○○○

कहो कि जिन कष्टों को हम अभी झेल रहे हैं, वे हमारे ही किए हुए कर्मों के फल हैं। यदि यह मान लिया जाए, तो यह भी प्रमाणित हो जाता है कि वे फिर हमारे द्वारा नष्ट भी किए जा सकते हैं। जो कुछ हमने सृजन किया है, उसका हम ध्वंस भी कर सकते हैं और जो कुछ दूसरों ने किया है, उसका नाश हमसे कभी नहीं हो सकता। अत: उठो, साहसी बनो, वीर बनो। सारा उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लो और याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे भीतर ही विद्यमान है।

– स्वामी विवेकानन्द
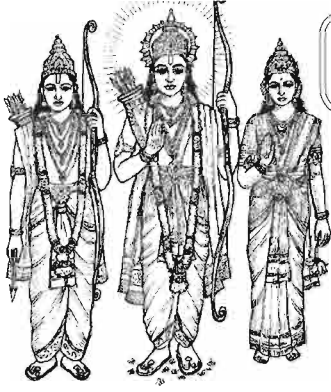
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (५/७)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)
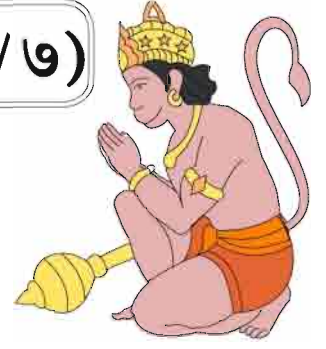
एक श्रोता वह है, जिसने सुना तो उसको लगा कि सत्संग की इतनी महिमा है। सत्संग दो प्रकार का होता है – मीठा भी होता है और मुक्केबाजी वाला भी होता है। जो बात आपको अच्छी लगी, तो समझ लीजिए कि मधुर परोसा जा रहा है, और जिसको सुनकर चोट लगे, थोड़ी तिलमिलाहट लगने लगे कि यह तो हमारा ही पूरा वर्णन है, तो समझ लीजिए कि चल गया होगा मुक्का और लग गया होगा। अब यह न मान लीजिएगा कि कड़ुवा लगे, तो वह दूसरे के लिए कहा गया है। कई लोग तो इस कला में भी बड़े निपुण होते हैं।

कथा में सबसे बड़ा आनन्द तो यह होता है कि इसमें कोई एक व्यक्ति तो होता नहीं कि उससे कह दिया जाय कि तुममें यह कमी है। वह बुरा भी मान सकता है। लेकिन अगर किसी दोष का वर्णन किया जा रहा है, तो कोई समझने वाला होगा, तो समझ लेगा कि यह तो मेरा ही वर्णन हो रहा है।

जब रावण और हनुमानजी आमने-सामने आए, तो उसको भी एक मुक्का हनुमानजी ने लगाया। पर दो अन्तर थे। एक तो यह कि जब लंकिनी मुँह के बल गिरी, तो उसके मुँह से रक्त बहने लगा, पर जब रावण गिरा, तब मूर्छित तो हुआ, पर रक्त नहीं निकला। यह अन्तर था दोनों में। आपने सुना होगा, जिन महात्माओं को बड़ा त्यागी, वैराग्यवान कहते हैं, उन्हें लोग कहते हैं कि ये बड़े विरक्त महात्मा हैं। विरक्त माने जिसमें रक्त न हो, वह विरक्त है। क्या इन विरक्त लोगों के शरीर में रक्त नहीं होता? इसका अर्थ है कि उनके शरीर में भी रक्त होता है, पर जिसके मन में संसार के प्रति रक्त नहीं है, राग नहीं है, वह विरक्त है। मन का राग ही मन का रक्त है। जैसे रक्त के द्वारा यह शरीर संचालित होता है, इसी तरह मन भी राग के द्वारा संचालित होता है। जिसके मन में राग नहीं, वह विरक्त है। मानो कसौटी है कि कथा सुनने के बाद, मुक्का पड़ने पर राग का रक्त कुछ बहा कि नहीं? या ज्यों के त्यों रह गये? अगर कथा सुनने के बाद राग का रक्त बहने लगे, कितनी भी मात्रा में सही, तो मानो मुक्का ठीक पड़ा, मुक्के का असर हुआ और उसके राग में कुछ कमी आई। व्यवहार में कमी नहीं, पर राग में कमी आनी चाहिए। व्यवहार का निर्वाह एक व्यक्ति करता है राग से और दूसरा व्यक्ति व्यवहार का निर्वाह करते हुए भी राग को जीवन में स्वीकार नहीं करता। लंकिनी उस श्रोता की तरह है, जिसका प्रतिफल सुनने के बाद दिखाई पड़ता है। रक्त बहा, सचमुच बेचारी विरक्त हो गई। जब विरक्त हो गई, तो बहुत बढ़िया बात हो गई। अभी तो गिर पड़ी थी, पर पुनः सम्हल कर उठ गयी –

पुनि संभारि उठी सो लंका। ५/३/५

कोई संसारी व्यक्ति उठावे भी, तो सावधान रहिए, वह पटकने वाला ही होगा। संत गिरावे भी, तो उठाने वाला ही होगा। उठने के लिए ही प्रहार किया, तो गिर पड़ी। पर उसे गिराया गिराने के लिए नहीं। वह सम्हलकर उठ खड़ी हुई और सत्संग की महिमा का गायन करने लगी। उस पर कितना प्रभाव पड़ा! अभी वह हनुमानजी को खाने के लिए प्रस्तुत थी, पर अब क्या कहती है –

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा।। ५/४/१

वह स्वयं हनुमानजी से कहने लगी और नाम भी कितना सुन्दर चुना! अभी वह कह चुकी थी कि तुम चोर हो, छिपकर जा रहे हो, पर जब वह कहने लगी कि भीतर

जाइए, तो हनुमानजी ने मुस्कुरा कर देखते हुये कहा, चोर को भीतर जाने दे रही हो क्या? बोली, नहीं महाराज, कोसलपुर राजा के दूत को। यह तो मेरा भ्रम था कि मैं समझती थी कि राजा रावण है, पर राजा तो एक ही हैं और वे प्रभु हैं। आप उनके दूत हैं, आपको ही तो नगर में जाना चाहिए। वह धन्य हो गई।

दूसरा, रावण के ऊपर हनुमानजी ने जब मुक्का मारा, तो उसका रक्त तो बहा नहीं। गोस्वामीजी ने कहा कि जब हनुमानजी का मुक्का लगा, पहले तो उसने हनुमानजी पर मुक्का चलाया। लिखा हुआ है, दोनों आमने-सामने थे। रावण श्रीराम की सेना में अपनी बराबरी का योद्धा तो किसी को मानता नहीं था। अगर वह सम्मान किसी को देता था, तो हनुमानजी को देता था। पर ऐसे लोगों के द्वारा दिया गया सम्मान बहुमूल्य नहीं होता। इसलिए रावण ने जब हनुमानजी की प्रंशसा की, तो अंगद बिल्कुल प्रसन्न नहीं हुए। मान लीजिए कोई संगीतज्ञ एक राग गा रहा हो और सामने वाला किसी दूसरे राग का नाम लेकर प्रशंसा करे, यह कहे कि वाह, क्या बढ़िया तुमने यह राग गाया है! तब तो वह संगीतज्ञ सिर पीट लेगा कि यही पारखी मिला है, जिसको राग का ही पता नहीं कि कौन-सा राग मैं गा रहा हूँ। वह दोहा तो आपने सुना ही होगा। किसी संगीतज्ञ या किसी कवि से ब्रह्मा ने पूछ दिया कि आप संसार में जा रहे हैं, तो वहाँ क्या चाहते हैं? तो उन्होंने बस यही कहा –

असमझवार सराहिबो समझवार को मौन।

ऐसा प्रशंसक मत दीजिएगा। नासमझ प्रंशसा करे, तो महान दुख और समझदार न करे, तो महान दुख। किसी ने सुन्दर कहा है –

अरसिकजनेषु कवित्वनिवेदनम्,
शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख।

हनुमानजी की प्रशंसा करते हुए अंगद के सामने जब रावण के मुख से यह निकल गया कि –

है कपि एक महा बलसीला। ६/२२/५

एक बन्दर बड़ा बलवान है, तो यह सुनकर अंगद को बुरा क्यों लग गया? उन्होंने कहा, अरे मूर्ख! तू भगवान राम की प्रशंसा नहीं कर रहा है, लक्ष्मणजी की प्रशंसा नहीं कर रहा है और प्रशंसा जिसकी कर रहा है, उसके बाद भी उसे बन्दर ही कह रहा है। अरे मूर्ख, तेरे देखते हुए लंका को जलाकर जिसने भस्म कर दिया हो, उसे तू बन्दर कह रहा है? ऐसा तू मूर्ख है! वह बन्दर हो सकता है क्या? इसलिये रावण के द्वारा की गई प्रशंसा से अंगद प्रसन्न नहीं होते।

जब हनुमानजी सामने आए, तो उसने यही कहा कि अन्य तो कोई हमारी बराबरी का नहीं है, तो अब आज हमारी तुम्हारी मुक्काबाजी हो जाए। हनुमानजी ने कहा, पहले तुम्हीं प्रहार करो। वह रावण का मुक्का भी साधारण नहीं था –

प्रबल बैराग्य दारुण प्रभंजन तनय,
विषय वन भवनमिव धूमकेतू। वि.प. ५८/८

गोस्वामीजी कहते हैं कि एक बार शरीर हनुमानजी का भी हिल उठा। क्योंकि रावण भी साधारण नहीं है, मूर्तिमान मोह है। एक ओर मोह और दूसरी ओर वैराग्य है। मोह ने प्रहार किया, पर हनुमान जी गिरे नहीं –

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। ६/८३/१

बस, घुटने के बल उन्होंने उस आघात को झेल लिया। उसके पश्चात् रावण पर हनुमानजी का मुक्का जब लगा, तो रावण मूर्च्छित होकर गिर गया। मूर्च्छा दूर हुई, उठा, क्या किया? –

मुरुछा गै बहोरि सो जागा।
कपि बल बिपुल सराहन लागा।। ६/८३/३

वाह बन्दर! बल तो तुममें है। फिर भी बन्दर ही कहा, वह इससे अधिक कुछ मानने के लिये तैयार नहीं। वह अपने स्थान पर मानो उदारतापूर्वक प्रमाण पत्र दे रहा था।

हमने सुना है, काशी में त्रयम्बक शास्त्री बड़े विद्वान वैद्य थे। एक रोगी स्वस्थ नहीं हो रहा था। उस समय अंग्रेजों का राज्य था। उसे वैद्य जी ने स्वस्थ किया । वहाँ के सिविल सर्जन ने उनकी चिकित्सा से प्रभावित होकर प्रमाण-पत्र दिया। वह प्रमाण-पत्र अंग्रेजी में था। उन्होंने कहा इसमें क्या है। बोले, यह आपके लिये प्रमाण पत्र है। उन्होंने उसे तुरन्त फाड़कर फेंक दिया। अब तुम मुझे प्रमाण-पत्र दोगे? रोग को अच्छा कर नहीं पाए, रोग का ज्ञान नहीं और अब तुम्हारा दिया हुआ प्रमाण-पत्र मैं लोगों को दिखाऊँगा? यहाँ यही बात है। रावण हनुमानजी को प्रमाण पत्र दे रहा है, वह मन में यह भी सोच रहा है कि मैं कितना उदार हूँ कि मारनेवाले को भी प्रमाण पत्र दे रहा हूँ –

कपि बल बिपुल सराहन लागा। ६/८३/३

सचमुच तुम बड़े बलवान हो। उसने सोचा कि देखें, मैं

प्रशंसा करूँगा, तो यह भी कुछ कहेगा कि धन्यवाद आपकी गुणग्राहिता के लिए। वह तो नियम भी है न कि आपकी कोई प्रशंसा करे, तो आप भी बदले में प्रशंसा कीजिए। कभी-कभी तो ऐसे लोग जो हैं, जो परस्पर प्रशंसा करते हैं। इसके लिये लिखा है कि ऊँट और गधा दोनों एक स्थान पर एकत्र हो गये और – **परस्परम् प्रशंसन्ति अहो रूपमहो ध्वनि**। ऊँट ने कहा गधे से, क्या सुन्दर आप का स्वर है! गधे ने कहा ऊँट से, क्या बढ़िया आपका रूप है! पर हनुमानजी तो प्रशंसा के पात्र हैं ही, लेकिन प्रशंसा करने के बाद रावण सोचने लगा कि देखें, बदले में मेरी प्रशंसा करते हैं कि नहीं, कि तुम जो कुछ भी हो, पर हो गुणग्राही। पर हनुमानजी ने कहा, 'धिग धिग' – धिक्कार है! धिक्कार है! अब रावण के क्रोध की सीमा नहीं रही। मैं इनकी प्रशंसा कर रहा हूँ और ये कह रहे हैं, धिक्कार है, धिक्कार है। तुम किसको धिक्कार रहे हो? बोले, तुम्हें भी और मुझे भी और तुमसे ज्यादा मुझे धिक्कार है।

धिग धिग मम पौरुष धिग मोही।
जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही।। ६/८३/४

मेरे मुक्का पड़ने के बाद भी तुम जीवित ही हो, तो फिर वह काहे का मुक्का है। व्यर्थ है। इसका अभिप्राय है कि वैराग्य का मुक्का लगने के बाद भी मोह अगर जीवित ही रह जाए, तो क्या प्रभाव है उस वैराग्य का? जब कोई मर जाता है, तो थोड़ा-बहुत लगता ही है कि संसार नाशवान है, और जो संसार में आया है, उसको जाना ही है। पर कुछ समय बाद फिर ज्यों-के-त्यों, मोह चैतन्य हो जाता है। वह क्षणिक मूर्च्छा थी। वस्तुत: एक क्षणिक प्रशंसा का क्या अर्थ है। बुद्धिमत्ता से सुना, वाह! वाह! कितनी अच्छी बात है! कितनी उच्च कोटि की बात है! और फिर जहाँ के तहाँ। वह बुद्धि का स्तर, मन से ऊपर है, पर वह सर्वोत्कृष्ट नहीं है।

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु। १/३१

यह चित्त ज्ञान में भी, भक्ति में भी केन्द्र है और यह सर्वोत्कृष्ट केन्द्र है। इस विषय में अधिक विस्तार का समय नहीं है। श्रीभरत की अयोध्या से चित्रकूट की जो यात्रा है, उसको ज्ञानदीपक के सन्दर्भ में देखिए, तो चित्त में ब्रह्म और जीव के एकत्व का वहाँ पर दर्शन होता है। इसे भक्ति के सन्दर्भ में देखिए, तो प्रेमाद्वैत है और ज्ञानियों की दृष्टि में यह ज्ञानाद्वैत है। श्रीभरत तो रामायण के महानतम सिद्ध-पुरुष हैं। साधना का क्रम आपको हनुमानजी के चरित्र में मिलेगा, विभीषण के चरित्र में मिलेगा, भरत जी के चरित्र में मिलेगा, किन्तु वे अलग-अलग प्रकार के हैं। हनुमानजी भी वस्तुत: शंकरावतार होने के नाते सिद्ध ही हैं और श्रीभरत जी भी सिद्ध ही हैं। किन्तु एक साधन का पथ वह है, जो अयोध्या से प्रारम्भ होता है और चित्रकूट में समाप्त होता है। वह कितनी दिव्य स्थिति थी, जहाँ पर गोस्वामीजी कहते हैं –

करत प्रबेस मिटे दुख दावा।
जनु जोगीं परमारथु पावा।। २/२३८/३

श्रीभरत उस आश्रम में जब प्रविष्ट होते हैं, तो ऐसा लगता है, जैसे किसी योगी ने परमार्थ तत्त्व को पा लिया हो। लेकिन गोस्वामीजी ने कहा, इससे भी ऊपर की स्थिति है, दुख मिट गया। लेकिन दुख मिट जाने के बाद भी सुख बाकी है। उससे भी ऊँचा स्तर हुआ। बोले –

सानुज सखा समेत मगन मन।
बिसरे हरष सोक सुख दुख गन।। २/२३९/१

न शोक रह गया, न हर्ष रह गया, न दुख रह गया, न सुख रह गया। स्थिति वहाँ तक पहुँच गई कि श्रीभरत और भगवान राम जब मिले, तो गोस्वामीजी ने कहा कि कौन भरत है, कौन राम है, इसका ज्ञान दूसरों को तो हो ही नहीं रहा है, स्वयं भरत को भी अपने भरतत्व का भान नहीं है, श्रीराम को अपने रामत्व का भान नहीं है –

परम पेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित अहमिति बिसराई।। २/२४०/२

यह दिव्य अद्वैत स्थिति है। लेकिन इस बात की कल्पना कीजिए कि जिसको प्रभु ने बार-बार कहा हो कि भरत में और मुझमें कोई भिन्नता नहीं है, जो ज्ञान और प्रेम की भूमि में उस अद्वैत स्थिति का साक्षात्कार कर चुका हो, वे श्रीभरत लौटकर जब अयोध्या आए, तो तपस्या कर रहे हैं। आश्चर्य हुआ। कुटिया बनाकर श्रीभरत रह रहे हैं। आश्चर्य होता है कि भरत को तपस्या की क्या आवश्यकता है?

तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु। २/२३६

अन्त में एकादशी के बाद भी तो द्वादशी को व्यक्ति पारण करता है। यदि कोई साधक साधना करे और साधना का फल पा लिया, तो नियम से छुट्टी मिल गई। **(क्रमशः)**

जिसने नेत्रहीनों को रोशनी दी

बच्चा जब छोटा होता है, तब वह बहुत-सी बातें देखकर सीखता है। अपने माता-पिता, रिश्तेदारों और मित्रों को देखने के अलावा वह पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और प्रकृति के सुन्दर दृश्य देखकर आनन्दित होता है। पर क्या आपने सोचा है कि जिसकी आँखें ही बचपन से न हो, वह बच्चा अपने जीवन में कितनी कमी अनुभव करता होगा? और उसमें भी यदि किसी की आँखें बचपन में ही किसी दुर्घटना में चली जाएँ, तो उसके मन पर क्या गुजरती होगी?

लुई ब्रेल के पिता का नाम साइमन था। वे घोड़े पर बैठने की चमड़े की जीन बनाने का काम करते थे। लुई का जन्म फ्रांस के कुपरवे में ४ जनवरी, १८०९ में हुआ था। लुई बचपन से नेत्रहीन नहीं था। तीन साल तक वह सब कुछ देख सकता था। खेलने में और प्रकृति का आनन्द लेने में उसके दिन मजे से बीत रहे थे।

लुई के पिता अपने औजारों से चमड़े को काटकर जीन बनाते थे। जब भी लुई उन औजारों से खेलने का प्रयत्न करता, तो उसके पिता उसे डाँट देते, ताकि उसे चोट न लग जाए। एक बार उसके पिता कहीं बाहर गए हुए थे। माँ खेत में कुछ काम कर रही थी। लुई खेलते-खेलते अपने पिता के वर्कशॉप में गया। उसने मेज पर एक चमड़े का टुकड़ा देखा और पास में उसमें छेद करने का एक नुकीला सूआ देखा। सूए से उसने चमड़े पर कुछ करने का प्रयत्न किया। किन्तु चमड़ा चिकना था, इसलिए सूआ फिसलकर उसकी दायीं आँख पर लगा। बेचारा लुई जोर से चिल्लाया। उसकी माँ दौड़ी-दौड़ी आयी। अपने बेटे की आँख पर उन्होंने पट्टी बाँधी। धीरे-धीरे लुई की दाईं आँख के सामने अँधेरा छा गया। पर इसके बाद और भी दुर्घटना हुई। वह यह कि उसकी दायीं आँख का घाव बायीं आँख में फैल गया। धीरे-धीरे उसकी आँखों की रोशनी कम होने लगी।

लुई के जीवन की पूरी दिशा ही बदल गई। वह बहुत छोटा था और उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसके साथ क्या हुआ है। धीरे-धीरे उसे समझ में आ गया कि वह अब नेत्रहीन हो चुका है। उस समय आज की तरह नेत्रहीन लोगों के लिए विशेष विद्यालय नहीं थे। उसके माँ-पिताजी चिन्तित थे कि लुई अब क्या करेगा? उसके पिताजी ने उसे एक छड़ी दी। वह छड़ी को जमीन पर टिकाकर चलता, ताकि कहीं गिर न जाए। उसके माता-पिता ने उसे घर के छोटे-मोटे काम करने सिखाए। कभी-कभी वह चलते-चलते गिर जाता था। पर धीरे-धीरे वह अपने घर के रास्तों को पहचानने लगा।

लुई का परिचय वहाँ के एक पादरी से हुआ। वे लुई को बहुत रोचक कहानियाँ सुनाते। उन्होंने लुई को एक स्कूल में प्रवेश दिलाया। अन्य बच्चों की तरह लुई कुछ देख तो नहीं सकता था। शिक्षक जो सिखाते, लुई उसे अच्छी तरह सुन लेता और वह उसके मस्तिष्क मैं बैठ जाता। वह किताबों के अक्षरों को छूकर देखता, किन्तु मन मसोसकर बैठ जाता।

लुई की आयु अब दस वर्ष की हो गई। उसे यह स्कूल छोड़ना था। उसके गाँव के पादरी को पता लगा कि पैरिस में नेत्रहीन बच्चों के लिए एक विशेष विद्यालय है। लुई के माता-पिता उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। किन्तु लुई की सीखने की ललक को देखते हुए उन्हें छोड़ना पड़ा। गाँव में पला-बढ़ा लुई अब अजनबी लोगों के बीच आधुनिक शहर में रहने लगा। उसे गाँव की बहुत याद आती थी। कभी-कभी वह फूट-फूटकर रोता भी था। धीरे-धीरे वह स्कूल के माहौल में अभ्यस्त हो गया। स्कूल के वर्कशॉप में चप्पल बनाना, बुनाई कार्य करना, वाद्य यंत्र बजाना इत्यादि कार्य सीख गया।

उस समय नेत्रहीन बालकों को पढ़ने के लिए कोई अच्छी तकनीक विकसित नहीं हुई थी। पुस्तक के पृष्ठों पर बड़े-बड़े उभरे हुए शब्द रहते थे। इसलिए छोटी-सी पुस्तक भी बहुत बड़ी और भारी हो जाती थी। इसके अलावा

शेष भाग पृष्ठ ७३ पर

साधुओं के पावन प्रसंग (२)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

(स्वामी शंकरानन्द महाराज के उपदेश और स्मृतियाँ)
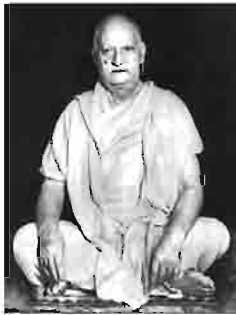
स्वामी शंकरानन्द

मन्त्र का माहात्म्य – मन्त्र की गोपनीयता की रक्षा करना। उसे किसी से मत कहना, यहाँ तक कि लिखना भी मत। गुरु के अलावा मन्त्र किसी को बोला नहीं जाता। शास्त्र में वर्णन है, 'मातृजरायुवत्' (अर्थात् जब तक गर्भस्थ भ्रूण पुष्ट होकर शिशु के रूप में जन्म ग्रहण नहीं करता, तब तक माँ उसकी गोपन में रक्षा करती है, उसी प्रकार जब तक ईश्वर-प्राप्ति नहीं होती, तब तक शिष्य को हृदय स्थित मन्त्र की रक्षा करनी चाहिए)। यह मन्त्र जीवन्त और शक्तिशाली है। इसके द्वारा तुम्हारे सभी संशय छिन्न हो जाएँगे। सभी प्रश्नों का समाधान हो जाएगा। इसमें कोई अविश्वास अथवा लुकाछिपी की बात नहीं है। आज से यह बात गाँठ बाँध लो कि उन्होंने (ठाकुर) ही तुम्हें यह (मन्त्र) प्रदान किया है। उन्होंने तुम्हारा भार ग्रहण किया है एवं तुम्हारे भीतर रहकर वे तुम्हें परिचालित करेंगे। 'कुछ नहीं हो रहा है' – यह सोचकर हताश मत होना। यह मन्त्र ही तुम्हारी रक्षा करेगा।

''तीर्थ-स्थानों में जब तुम जाओगे, तब जिन भी मूर्तियों का दर्शन करोगे, उन्हें सर्वदेवदेवीस्वरूप ठाकुर की ही मूर्ति समझना। शास्त्रों में लिखा है,

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कारं केशवं प्रतिगच्छति।।

– जिस प्रकार आकाश से गिरने वाला जल विभिन्न मार्गों से होकर सागर में मिल जाता है, उसी प्रकार सभी देवताओं को अर्पण किए गए प्रणाम, उन एक केशव को ही अर्पित होते हैं।

प्रश्न – महाराज, कुछ उपदेश दीजिए।

महाराज – प्रतिदिन ठाकुर का वचनामृत पढ़ना। उसी में सब उपदेश हैं। यदि ठाकुर के उपदेश से तुम्हारा संशय नहीं जाता है, तो मेरे उपदेश सुनने से भी कुछ नहीं होगा।

दीक्षार्थी एक-एक कर महाराज के पास गए। उनके प्रणाम करने पर महाराज ने अपनी रुद्राक्षमाला से रक्षित कवच के द्वारा सबका मस्तक स्पर्श किया। इसके बाद साष्टांग प्रणाम कर हम कमरे से बाहर निकले और मन्दिर में ठाकुर को प्रणाम कर मठ में प्रसाद ग्रहण किया।

प्रसाद ग्रहण करने के बाद मैं स्वामी बोधात्मानन्द जी महाराज के पास गया और उन्हें दीक्षा का पूरा वृत्तान्त सुनाया। उन्होंने पूछा, ''क्या तुमने गुरुदक्षिणा दी?''

मैं – हाँ महाराज। मेरे पास पैसे नहीं थे। अद्वैत आश्रम से तो किसी अनुष्ठान के लिए पैसे नहीं ले सकता था। इसलिए एक ब्रह्मचारी ने दो रुपए की व्यवस्था कर दी। एक रुपये की फल-मिठाई खरीदी और एक रुपये की गुरुदक्षिणा दी।

स्वामी बोधात्मानन्द जी – नहीं, तुमने गुरुदक्षिणा नहीं दी।

मैं – नहीं महाराज, मैंने एक रुपए की गुरुदक्षिणा दी है।

स्वामी बोधात्मानन्द जी – नहीं, तुमने गुरुदक्षिणा नहीं दी है। गुरुदक्षिणा किसे कहते हैं, जानते हो? आज गुरु ने जो बीजमन्त्र तुम्हारे हृदय में स्थापित किया है, वह मन्त्र कालान्तर में अंकुरित होकर पौधा होगा। उसी पौधे में धीरे-धीरे पत्ते, फूल और फल लगेंगे। वह परिपक्व फल (अर्थात् ईश्वरलाभ) जिस दिन तुम गुरु के हाथों दोगे, उसी दिन ही तुम्हारी सच्ची गुरुदक्षिणा होगी। गुरु अपने शिष्य से ऐसी दक्षिणा चाहते हैं।

१३ जनवरी, १९६२, शनिवार को सुबह तीन बजकर दस मिनट पर स्वामी शंकरानन्द जी महाराज की महासमाधि हुई। कुछ ही मिनटों में बेलूड़ मठ से फोन आया। बड़ी भोर में बस से मठ पहुँचा और महाराज को बिस्तर पर लेटे हुए देखा। मुझे महाराज के चरणों की छाप लेने की सेवा दी गई। उनके चरणों के नीचे दो तकिये लगाकर दोनों चरणों को

थोड़ा ऊँचा किया गया। एक ब्रह्मचारी पदचिह्न लेने के लिए कपड़े काटने लगे और दूसरे रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, आलता इत्यादि महाराज के चरणों पर लगाने लगे। मैं कटे हुए कपड़े दूसरे तकिये पर रखकर एक-एक कपड़े पर महाराज के चरणद्वय की छाप लेने लगा। हम कुछ साधु-ब्रह्मचारियों ने एक साथ वह कार्य किया, जिससे महाराज के भक्तगण उनके पदचिह्न प्राप्त कर सकें। महाराजजी के चरणों की एक छाप अभी भी मेरे पास है। महाराजजी की जपमाला मैंने गंगा में विसर्जित कर दी थी। बाद में यह सोचकर पश्चात्ताप हुआ कि रखने से अच्छा रहता। परवर्तीकाल में स्वामी निर्वाणानन्द जी महाराज से कहा, ''महाराज, कृपया मुझे महाराज (स्वामी शंकरानन्द) की कोई व्यवहृत वस्तु या पुस्तक दीजिए।'' उन्होंने महाराज द्वारा व्यवहृत वचनामृत का तृतीय खण्ड मुझे दिया। वह अभी भी मेरे पास है।

महाराज को हमने हमेशा गुरुगम्भीर रूप में ही देखा है। वे लोकप्रचार-रहित, मितभाषी और आदर्श संन्यासी थे। उनका जीवन ही उनका उपदेश था। गहन साधन-भजन के फलस्वरूप उनका स्नायुतंत्र अत्यन्त संवेदनशील हो गया था। वे शोर सहन नहीं कर पाते थे। मठभवन के प्रांगण में आम के पेड़ के नीचे कौए का घोसला था। दोपहर को कौए 'काँव-काँव' शब्द करते थे। इससे महाराज को बहुत कष्ट होता था। एक बार एक ब्रह्मचारी खड़ाऊँ पहनकर आवाज करते हुए चल रहे थे। महाराज ने उन्हें बुलाकर कहा, ''तुम्हारे खड़ाऊँ की जोड़ी मुझे दो। मैं उसके तलवों पर टायर काटकर कील ठोक दूँगा, जिससे आवाज नहीं होगी।''

महाराज के सेवकों के साथ मेरी घनिष्ठता थी। उनसे महाराज की बातें सुनता था। एक बार एक पुराने भक्त अपनी छोटी बच्ची को लेकर महाराज के दर्शन के लिए आए। महाराज उन भक्त के साथ राजेन्द्र प्रसाद (भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति) के बारे में बात कर रहे थे। उनकी बात सुनकर उस बच्ची ने कहा, ''पिताजी, मैं राजेन्द्र-प्रसाद खाऊँगी।'' महाराज ने तब ननीगोपाल महाराज को बुलाकर कहा, ''ननी, इसे राजेन्द्र-प्रसाद दो।'' ननीगोपाल महाराज ने उसी समय दो बड़े सन्देश (मिठाई) लाकर बच्ची को दिया। स्वामी शंकरानन्द ने उस बच्ची से कहा, ''अब तुम राजेन्द्र-प्रसाद खाओ।''

निम्नलिखित तीन परोक्ष उपदेशों से मुझे जीवन में बहुत लाभ हुआ है। ये उपदेश मैंने अन्य साधुओं से सुनकर अपने शब्दों में लिखे हैं।

प्रथम – बेलघरिया रामकृष्ण मिशन के नृपेन महाराज (स्वामी ध्यानात्मानन्द) एक दिन महाराज से मिलने आए। उन्होंने कहा, ''महाराज, रामकृष्ण मिशन के भविष्य के बारे में सोचकर पिछले तीन दिनों से मेरी नींद नहीं हुई है। ठाकुर की कुछ सन्तानों (संन्यासी शिष्य) को मैंने देखा है, इसके बाद स्वामी शुद्धानन्द और विरजानन्द जी को भी देखा है और अब आपको भी देख रहा हूँ। सोच रहा हूँ कि इसके बाद क्या होगा?'' महाराज ने उसी समय अपने गुरुगम्भीर स्वर में कहा, ''यह संघ किसका है?'' बस, यह बात सुनकर ही ध्यानात्मानन्द जी की उद्विग्नता और आशंका शान्त हो गई।

द्वितीय – एक बार एक साधु ने महाराज के पास आकर कहा, ''महाराज जब मैंने घर-बार छोड़ा था, तब कितना वैराग्य और व्याकुलता थी। मठ में बीस वर्ष हो गए हैं, किन्तु अब वैसा कुछ नहीं लगता।''

महाराज ने आवेगपूर्वक कहा, ''घर चले जाओ।''

''महाराज, यह क्या कह रहे हैं !''

''इसी समय घर चले जाओ।''

''महाराज, मैं संन्यासी हूँ, मैं क्यों घर जाऊँगा?''

''घर जाओगे, तो देख सकोगे कि तुम्हारे भाई, स्वजन-परिजन किस प्रकार संसार में बद्ध होकर जीवन-यापन कर रहे हैं, अभाव-दारिद्र्य, रोग-शोक में जल-भुन कर मर रहे हैं। उनलोगों को देखकर तुम अपने जीवन की तुलना कर सकोगे। देखो, वह त्याग और व्याकुलता अब तुम्हारे जीवन के अंग हो गए हैं, इसलिए तमु समझ नहीं पा रहे हो। मठ से बाहर जाओगे, तभी तुम इसका अन्तर समझ सकोगे।''

तृतीय – एक ब्रह्मचारी अद्वैत वेदान्त की साधना करते थे। वे मन्दिर नहीं जाते थे और जप-ध्यान भी नहीं करते थे। वे 'अहं ब्रह्मास्मि' इस भाव का चिन्तन-मनन करते थे। किन्तु उनकी कर्म और सेवा में बहुत निष्ठा थी। महाराज ने एक दिन उन्हें बुलाकर पूछा, ''क्या तुम मन्दिर जाते हो, नियमित जप-ध्यान करते हो?'' ब्रह्मचारी ने कहा, ''नहीं महाराज।'' तब महाराज ने उनसे कहा, ''आज से सुबह-शाम तुम मेरे कमरे में बैठकर नियमित जप-ध्यान करोगे। देखो, अच्छी आदतें छोड़ देने से वे एक-एक कर चली जाती हैं। किन्तु उनको पकड़े रहने से वे चरित्र-गठन करती हैं। सदभ्यास कभी भी मत छोड़ना।'' **(क्रमशः)**

शरीर नहीं, मन के सौन्दर्य को देखो

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

शरीर के सौन्दर्य के आगे मन के सौन्दर्य को देखो। यदि मन का सौन्दर्य अच्छा नहीं रहा, तो शारीरिक सौन्दर्य की अधोगति होती है। आध्यात्मिक जीवन में सबसे बड़ी बाधा है मोह। यह मोह बाहर के सौन्दर्य के प्रति अधिक रहता है। इसलिये साधक-साधिकाओं को बहुत सादगी से रहना चाहिये। लक्ष्मी के समान रहना और आधुनिक लक्ष्मी के समान रहना, इसमें बहुत अन्तर है। यह शरीर हमें प्रभु ने दिया है, तो इसको शुद्ध और पवित्र रखो। सादगी से रहो। सादा जीवन व्यतीत करो। काल शरीर को क्षीण करता जा रहा है। इसलिये मोह और बाहर के सौन्दर्य से बचकर अधिक-से-अधिक भगवान का नाम लेना चाहिए। संसार में सुख-दुख तो आते-जाते रहते हैं, ये अपने पूर्व जन्म के कर्म हैं, इनसे विचलित न होकर ईश्वर में विश्वास रखकर उनका नाम लेते रहना चाहिये और सत्कर्म करते रहना चाहिये। हम अभी जिस परिस्थिति में हैं, यह हमारे पूर्व जन्म का ही कर्म है। इसलिये अच्छी परिस्थिति के निर्माण के लिये भी वर्तमान में अच्छे कर्म करना चाहिये। यदि विपरीत परिस्थिति में, दुख के समय हमारा मन भगवान में होगा, तो हमें पीड़ा होगी, पर दुख नहीं होगा। जब विपत्ति और कष्ट आते हैं, तब हम भगवान को बुलाते हैं। भगवान को पुकारने से कष्ट कम होता है। ठाकुर, माँ स्वामीजी के फोटो की ओर बार-बार देखने से बाधायें दूर हो जाती हैं।

हम यदि भगवान से प्रार्थना करते हैं, तो भगवान हमारी बहुत बड़ी सहायता करते हैं। मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा है। इसलिये मन को शरीर से निकाल कर भगवान के ऊपर लगाना चाहिये। अरे ! भगवान ने हमें शरीर इसलिये दिया है कि हम उन्हें पुकार सकें। लेकिन हम भगवान को भूलकर बाकी सब काम करते हैं। हम ऐसा कर्म करते हैं कि शरीर तो मनुष्य का है, पर कर्म पशु के समान है। उसका फल यह होता है कि व्यक्ति को अनन्त जन्म तक कष्ट भुगतना पड़ता है। इसलिये दुखों से बचने के लिये जगत में सत्कर्म करें और लोगों से सद्व्यवहार करें, सबके प्रति अच्छे भाव रखें। सबसे बड़ी बात यथाशक्ति गरीबों की सेवा कर धन्यता का अनुभव करें। जो कुछ भी सुविधायें आपको भगवान से मिली हैं, हम उन्हें उनके ही काम में लगायें, उनकी सन्तानों की सेवा में लगायें, यह हमारा नैतिक कर्तव्य है। भगवान द्वारा आपको धन विलासिता के लिये नहीं दिया गया है। यदि हम अच्छे दिल से सेवा करेंगे, तो हमें हजार गुना शान्ति मिलेगी। थोड़ी-सी भी निःस्वार्थ बुद्धि आये, तो यह भी भगवान की ही कृपा है। दूसरों के हित में ही हमारा कल्याण है। दूसरों का हित करने से हमारे मन में उदारता आती है। मनुष्य की सेवा ही व्यावहारिक धर्म है। मनुष्य की सेवा सबसे बड़ी सेवा है। दूसरों के लिए जीयें, यही सच्ची सेवा है।

जीवन में धर्म का आचरण करने से मनुष्य का जीवन सार्थक होता है। यह संसार लहसुन की गंध के समान है। लहसुन की गंध को हटाने के लिए बर्तन को गरम करना पड़ता है। जीवन को गरम करने की प्रक्रिया है सत्संग। सत्संग से ही संसार-रोग ठीक होता है। सत्संग संसार रूपी डायबीटीज की दवा है। इसके लिए मन को शिक्षित करना पड़ता है। अगर ईश्वर की कृपा से सत्संग करते रहोगे, तो संसार रूपी लहसुन की गंध चली जायेगी। भगवान का नाम लेने के लिए एकान्त चाहिए, उससे मन एकाग्र होता है।

आध्यात्मिक जीवन के बारे में हम केवल बहुत कुछ सुनते हैं, लेकिन उसका थोड़ा-सा भी आचरण में नहीं लाते हैं। परमार्थ जीवन व्यावहारिक जीवन है। यह आचरण करने के लिये ही है, व्यवहार में लाने के लिये है। परमार्थ जीवन, साधक-जीवन उत्तम पुरुष में होता है। साधना सबसे पहले स्वयं से, अपने आचरण से प्रारम्भ होती है। इसलिये सबसे पहले सत्संग करना आरम्भ करो। सत्संग से हमारे जीवन की आसुरी वृत्तियाँ, अशुभ बाधायें दूर हो जाती हैं। सत्संग से शुभ संस्कार, शुभ विचार आते हैं।

हमें अपना दृष्टिकोण बदलना चाहिए। सांसारिक सौन्दर्य के पीछे ईश्वर को देखना चाहिये। जीवन में जो भी नया और अच्छा सौन्दर्य दिखे, वह ईश्वर है। मनुष्य की देह में ही परम सुन्दर भगवान का सबसे अधिक प्रकाश है। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (७६)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – महाराज, ठाकुर की इच्छा न होने से कुछ भी नहीं होगा। ऐसा ही है न महाराज?

महाराज – हमलोग ठाकुर की इच्छा नहीं कह सकते। जब हमारी कोई इच्छा नहीं रहेगी, तभी ठीक-ठीक ठाकुर की इच्छा से कार्य होगा। 'मत्त: परतरं नान्यत्'। जब तक हमारी इच्छा रहती है, तब तक हम कहते हैं कि कर्म संस्कार से हो रहा है।

१६-०६-१९६१

प्रत्येक पुरुष में दो बातें हैं – एक रूप और दूसरा सनातन। इसे जानकर अनुद्विग्न रहना चाहिये, नहीं तो बहुत दुख हो सकता है। कोई बात कहने पर, वह किसके मन में क्या प्रतिक्रिया करेगी, जानते हो क्या? कोई भी व्यक्ति खराब नहीं है, तुम बुलाकर पास बैठाकर दो बातें कहकर तो देखो, फिर वह अद्भुत व्यक्ति लगेगा। किसी विशेष स्थिति में मन थोड़ा खराब लगता है।

प्रश्न – जड़ वस्तुओं में उस चैतन्य का बोध कैसे होगा? 'ब्रह्मार्पणम्' मंत्र की साधना कैसे होगी?

महाराज – उसका बोध समय आने पर होगा। मैं उसके लिए 'अहं वैश्वानरो' कह लेता हूँ। इससे साधक को एक सहारा मिलता है।

बुद्धि की क्रिया को ठीक तरह से नहीं समझने से विचार ठीक नहीं रहता। हाथ कटने पर दुख होता है देह को। उपवास करने से दुर्बलता का अनुभव होता है – प्राण को। गाली देने पर अपमान लगता है – मन को। हजार प्रयत्न करने पर भी गोमांस नहीं खा सकूँगा – यह बुद्धि-विचार है। समझे? बुद्धि का कार्य विचार करना है। विवेक का अर्थ ही है – विविच् (पृथक् करना), अच्छे-बुरे का विचार करना। किन्तु इस मार्ग पर चलते समय शीघ्रता करने से काम नहीं चलेगा – शनै: पन्था: शनै कन्था:। हर कदम विचारपूर्वक उठाना होगा। इस मार्ग पर सुस्थिर भाव से धैर्यपूर्वक चलने से होगा ही होगा। कहा गया है न कि **'शक्य: मे अवाप्तुमुपायत: –** साधना से प्राप्ति सम्भव है।' किन्तु तुम जो निर्जन में बैठकर ध्यान करने की सोच रहे हो, वह विचार छोड़ो। वह सत्त्व की तामसिक वृत्ति है। सुख से रहना चाहते हो, किन्तु मन भयानक है। आरुरुक्षो: – साधक जब तक 'यदा नेन्द्रियार्थेषु' – इन्द्रियों के भोगों से अनासक्त नहीं हो जाता है, तब तक अकेला रहने से बड़ी विपत्ति की सम्भावना है। दो-तीन लोग एक साथ रहकर कर्म करो और धीरे-धीरे अन्तर्मुखी होओ। जब लगे कि बाहरी बातों से विशेष उद्विग्न नहीं हो रहे हो, तब समझना कि तुम आगे बढ़ रहे हो। हमें पहले थोड़ा सहन कर चलना होगा। किसी के कुछ कहने पर चुपचाप सुनना। उसमें से जो ग्राह्य हो, ले लेना और शेष छोड़ देना।

पहले कार्य करना होगा, साथ ही तीक्ष्ण विचार शक्ति भी चाहिए। ऐसा न होने पर, चाहे जितना बड़ा योगी क्यों न हो, कर्म में उसकी आसक्ति अवश्य ही होगी। ज्ञान-चर्चा से निष्काम भाव से कर्म किया जा सकता है। नारायण भाव से सेवा क्या है? नारायण हैं कहाँ – रूप में, विद्या में या कर्म-शक्ति में? वे सब के भीतर से चेतना-रूप में झाँक रहे हैं। यदि मन ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहेगा, तो हजारों कामों के बीच में भी कुछ क्षति नहीं होगी, समय मिलते ही मन उधर जायेगा।

२२–६-१९६१

एक दीक्षित, अविवाहित और साधन-भजनशील युवक के बारे में महाराज कहते हैं कि उसमें बहुत परोपकार-भाव है। एक दिन सचिवालय के निकट एक गाड़ी खराब होने के कारण वाहन-चालक परेशानी में पड़ गया। उसने उसकी गाड़ी को ठेलने में मदद की थी। वाहन चालक उसे चार आना पैसा देना चाहता था, तब वह बाबूपन के भाव से

लज्जित हो गया। इसके पीछे उसका अहंकार था। मैं होता, तो अपनी सेवा के पारिश्रमिक के रूप में वह चार आना ले लेता और उस पैसे को चार अंधों को दे देता।

तुम ध्यान से देखो, मनुष्य को कई भागों में बाँटा जा सकता है। पहला नैतिक जीवन – दंड के भय से, नरक के भय से मनुष्य सन्मार्ग पर चलने को बाध्य होता है। तदुपरान्त धार्मिक जीवन – तब अभ्युदय का आरम्भ होता है। धार्मिक होना है, सत्कर्म में रुचि रखनी है, क्योंकि उससे सुखपूर्वक रहा जा सकता है। इसके बाद की अवस्था है, आध्यात्मिक जीवन। कैसे आध्यात्मिक उन्नति की जाय, अपने तन, मन, बुद्धि का विकास किया जाय तथा इन सबको जानकर इनके सम्बन्ध में सजग, सावधान रहा जाय।

१-७-१९६१

प्रश्न – काली के रूप का क्या अर्थ है?

महाराज – काली का रूप अतीव प्रतीकात्मक है। श्रीरामकृष्ण क्षर पुरुष हैं, माँ काली अक्षर हैं और निर्गुण शिव पुरुषोत्तम हैं। माँ काली का एक हाथ वराभय मुद्रा में है और एक हाथ में तलवार है, गले में मुण्डमाला है। संसार एक श्मशान है। पिता-पितामह के सिर से तैयार यह संसार है। रोग-शोक, दुख-दारिद्र्य, फिर दूसरी ओर माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी का स्नेह-प्रेम और अनुराग है। इन दोनों के बीच में माँ हैं। फिर ठाकुर पुरुषोत्तम हैं, माँ अक्षर हैं और हम लोग क्षर हैं।

सेवक – महाराज, इस श्लोक को समझायेंगे क्या?

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः।।

महाराज – बलपूर्वक छोड़ने से मानव-जीवन का विकास बाधित हो जाता है। विद्यालय में बलपूर्वक उत्तीर्ण कराने से विद्यार्थी अन्तिम वर्ष की परीक्षा पास नहीं कर पाता है। हो सकता है कि बाद में पढ़ाई-लिखाई ही नहीं हुई। एक व्यक्ति आश्रम में आकर पड़ा हुआ है, कुछ काम नहीं करता। तमोगुण से आच्छन्न है। यदि घर में रहता, तो शायद इससे अच्छा होता, शरीर इतना खराब नहीं होता। किन्तु क्या यहाँ कुछ भी नहीं होता है? बहुत कुछ होता है। इसका इस बार ब्रह्मचर्य का संस्कार हुआ। अगले जन्म में सच्चा साधु होकर जन्म लेगा। फिर भी पेट की समस्या एक है। रसना-आनन्द, जिह्वा-सुख-स्वाद को संयमित करना चाहिये। जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार को संयमित रखना चाहिये। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ६८ का शेष भाग

नेत्रहीन बच्चों को भी पढ़ने में काफी असुविधा होती थी। लुई को भी पुस्तक पढ़ने में बहुत असुविधा होती थी। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि क्या ऐसी कोई सरल तकनीक निकाली जा सकती है, जिसके द्वारा नेत्रहीन बच्चे आसानी से पढ़ सकें। लुई की मेधा असाधारण थी। वह एक बार जो कार्य करने लग जाता, उसे पूरा किए बिना नहीं छोड़ता। उस समय लुई की उम्र मात्र बारह वर्ष थी।

लुई दिनोंदिन, वर्षों तक इसका प्रयास करने लगा। अन्ततः उसने एक तकनीक खोज निकाली। उसने सुए के द्वारा कागज में छह छेद कर बिन्दियों का निर्माण किया और एक-एक बिन्दी को उठाकर वर्णमाला के अक्षरों की ध्वनियाँ बिठायीं। लुई ने तुरन्त यह पद्धति अपने सहपाठियों को सिखाई और सब लोगों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस पद्धति से नेत्रहीन बच्चे आसानी से पुस्तक पढ़ सकते थे।

लुई की उम्र १९ वर्ष हो गई थी और उनकी पढ़ाई पूरी हो चुकी थी। स्कूल के डायरेक्टर साहब ने उनकी लगन और निष्ठा देखकर उन्हें उसी स्कूल में शिक्षक की नौकरी दी। लुई ब्रेल चाहते थे कि उन्होंने जिस पद्धति का आविष्कार किया है, उसमें कुछ पुस्तकें छपें, ताकि नेत्रहीन बच्चों को पढ़ने के लिए अच्छी-अच्छी पुस्तकें प्राप्त हों। शुरुआत में तो बहुत ही कम लोग लुई की मदद के लिए आए। उन्होंने जिस लिपि का आविष्कार किया था, उसे अन्य लोग इतनी आसानी से स्वीकार नहीं कर रहे थे। लुई को बहुत मुसीबतों का सामना करना पड़ा। जब लोगों ने देखा कि उनकी इस तकनीक द्वारा अनेक नेत्रहीन बच्चे आसानी से पुस्तकें पढ़ रहे हैं, तब उन्होंने इसे स्वीकार किया।

१८४४ में उन्हें टी.बी. का रोग हो गया और धीरे-धीरे तबीयत बिगड़ती गई। ६ जनवरी १८५२ को उन्होंने इस लोक से विदा ली। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी इस पद्धति का प्रचार पूरे विश्व में हुआ। आज भी उनकी इस लिपि को हम ब्रेल लिपि के नाम से जानते हैं। ○○○

ईशावास्योपनिषद (१४)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

यह है विद्या में रत लोगों की दशा। विद्या में रत हैं, किन्तु जब तैरने की बात आयेगी, वे नहीं जानते हैं। बाकी सब कुछ जानते हो, तो तैरना भी सीखो। कर्म से मनुष्य का कर्म-बन्धन कटता है। केवल विद्या के ज्ञान से कभी कर्म बन्धन नहीं कटता है। ज्ञान से विवेक होता है, वैराग्य होता है। कर्म-बन्धन कर्म के सहारे ही कटता है, किन्तु कब? जब हम कर्म को ईश्वर से संयुक्त कर देते हैं तब। यहाँ पर अविद्या और विद्या के माध्यम से व्यक्तिगत साधना की बात कही गयी।

अब इसके बाद जो दूसरा त्रिक् है, उसका अर्थ अब हमारे लिए सरल हो जायेगा। क्या कहते हैं आगे?

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ।।१२।।
अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।।१३।।
सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।१४।।

यह दूसरा त्रिक् है। इसमें संभूति और असंभूति का फल अलग प्रकार से बताया गया है। यहाँ पर असंभूति के लिए विनाश शब्द का उपयोग किया गया है। जो संभूति और विनाश दोनों को आत्मा के साथ जानता है, अर्थात् इन दोनों के साथ जो आत्मतत्त्व को जानता है, माने संभूति को आत्मा से युक्त करके जानता है और असंभूति को भी आत्मा से युक्त करके जानता है, वह 'विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा' – उस विनाश के द्वारा या असंभूति के द्वारा मृत्यु को पार कर लेता है और संभूति के द्वारा अमरत्व का अनुभव करता है।

अब यहाँ पर प्रश्न यह है कि संभूति और असंभूति क्या है? इसके कई अर्थ किये गये हैं। यहाँ पर भगवान भाष्यकार के द्वारा असंभूति के लिए अव्याकृत प्रकृति प्रधान अर्थ किया गया है, जहाँ पर प्रकृति अपने मूल स्वरूप में विद्यमान है। संभूति के लिए उन्होंने हिरण्यगर्भ कार्यब्रह्म कहा है।

कहते हैं कि जो कार्यब्रह्म की उपासना करते हैं, वे और अधिक अन्धकार में जाते हैं। यह बात भी समझ में नहीं आती कि कोई कार्यब्रह्म की उपासना कैसे करे? कोई कारणब्रह्म की उपासना कैसे करे? पहले ये बहुत ही technical रहे होंगे। न तो यह प्रणाली यहाँ इस भाष्य में प्रदर्शित है और न ही अन्यत्र कहीं देखने को मिलती है। विद्वानों के द्वारा संभूति का एक अर्थ और किया गया है – संभू माने बहुत से लोग एक साथ मिलकर के रहें, जिसको हम समाज कहते हैं। संभू माने एक साथ रहना और असंभूति माने अकेले, एकल रहना।

एक व्यक्ति अपने लिए जीता है। एक व्यक्ति समाज के लिए जीता है। ये दो स्थितियाँ हो सकती हैं। पहले तो अविद्या और विद्या की बात कही। वह व्यक्तिगत साधना है। ठीक है, मैं कर्म में लगा हुआ हूँ, कर्म के साथ ईश्वर को जोड़ता हूँ, तो कर्म कर्मयोग बन जाता है। उसी प्रकार यह जो विद्या है, इस विद्या को ईश्वर से जोड़ता हूँ, तो विद्या के भीतर जो अमरत्व प्रदान करने की क्षमता है, वह क्षमता प्रकट हो जाती है। अब यहाँ पर यह कहा जा सकता है असंभूति माने, एक व्यक्ति केवल अपने लिए साधना कर रहा है और संभूति माने, एक व्यक्ति समाज की साधना कर रहा है। यदि हम इसे व्यक्तिगत साधना और सामाजिक साधना, इन दो अर्थों में ले लें, तो मुझे लगता है कि इसका अर्थ स्पष्ट हो सकता है। एक व्यक्ति केवल अपनी साधना में लगा है और दूसरा व्यक्ति है, जो समाज की साधना करता है। पर दोनों के साथ ईश्वर का तत्त्व जुड़ा रहे, यह कहा गया। यदि आत्मतत्त्व व्यक्तिगत साधना के साथ जुड़ा हुआ नहीं है, तो व्यक्तिगत साधना में फिर मनुष्यों को सिद्धियों की कामना हो जाती है, उसका मन सिद्धियों की ओर चला जाता है। यदि मैं साधना कर रहा हूँ और ईश्वर मेरा लक्ष्य न हो, तब मेरा लक्ष्य क्या बनता है? मैं फिर अणिमादि सिद्धियों की ओर चला जाता हूँ। सामान्य रूप से नब्बे क्यों कहें, निन्यानबे प्रतिशत जो साधक हुआ करते हैं या और भी 99.9% जो साधक होते हैं, वे अपनी साधना से च्युत

हो जाते हैं, उनका लक्ष्य सिद्धियाँ हो जाती हैं, वे सिद्धियों की ओर चले जाते हैं कि कुछ चमत्कारिक सिद्धियाँ मिल जायें। व्यक्तिगत साधना का लक्ष्य अगर ईश्वर न हो, तो व्यक्तिगत साधना मनुष्य को दूसरी ओर, सिद्धियों की ओर ले जाती है। उसी प्रकार सामाजिक साधना में भी ईश्वर अगर लक्ष्य न हो, तो मनुष्य केवल नाम-यश में सिमट करके रह जाता है।

इसलिये हम देखते हैं कि फिर समाज में तरह-तरह के दोष उत्पन्न होते हैं। कोई सेवा करने के लिए संस्था बनाता है। किन्तु उस संस्था के पीछे आध्यात्मिकता टूटने लगती है। आपने देखा होगा ऐसी कितनी संस्थाओं को, जहाँ पर लोग सेवा भाव से प्रेरित होकर के संस्था शुरू करते हैं, परन्तु व्यक्ति का अहंकार इतना प्रबल हो जाता है कि उसके कारण संस्था टूट जाती है, काम नहीं हो पाता है। किन्तु यहाँ कहा गया कि यह जो संस्था है, उसके माध्यम से भी साधना बलवती हो सकती है, यदि उसे ईश्वर के साथ संयुक्त कर दें तो। व्यक्तिगत साधना को, असंभूति को ईश्वर के साथ जोड़ दें, तो इसके भीतर मृत्यु से पार कर देने की क्षमता है। किन्तु यदि ईश्वर से हमारी व्यक्तिगत साधना न जुड़े, हम गलत राह पर चले गये, हम सिद्धियों की राह पर चले गये, तो यह हानिकर है। इसीलिए तो जब नरेन्द्रनाथ (जो स्वामी विवेकानन्द बने) ने श्रीरामकृष्ण से समाधि की स्थिति मे रहने का वरदान माँगा, तो उन्होंने धिक्कारते हुए कहा था – छि: ! छि: ! यह कैसी ओछी बातें करता है? कैसी ओछी बुद्धि है तुम्हारी? तू अपनी मुक्ति के लिए मरता है रे? इससे भी ऊँची अवस्था है। ऊँची अवस्था की बात उन्होंने बाद में समझा दी। जो दूसरों की मुक्ति के लिए प्रयत्नशील होता है, उसे मुक्ति पहले मिलती है, बनिस्बत उसके, जो अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील होता है। स्वामी विवेकानन्द एक नया सूत्र देते हैं – यदि तू अपनी मुक्ति के लिए चेष्टा करेगा, तो तुझे मुक्ति बाद में मिलेगी। यह विपरीत सूत्र मालूम पड़ता है, पर ठीक सूत्र है।

इसके सन्दर्भ में बात ऐसी ही लगती है। असंभूति की उपासना, व्यक्तिगत केवल अपना कल्याण है। जैसे हम धर्म के क्षेत्र में भी अपने पुण्य के लिए दूसरों से दुर्व्यहार करते हैं ! जैसे हम काशी-विश्वनाथ मंदिर में जायेंगे, तो हम धक्का देकर के पहले मंदिर में पहुँचकर अभिषेक करना चाहते हैं। एक बूढ़ी माई गिर पड़ी, एक बूढ़े बाबा गिर पड़े, हम रौंदते हुये चले जाते हैं। स्वामीजी पूछते हैं कि क्या यही तुम्हारी साधना है? नहीं, यह तुम गलत काम कर रहे हो। क्या है यह? तुम रौंदते हुए चले गये ! तुम चाहते हो पहले अभिषेक करना ! अपना पुण्य बटोरना ! तो ये कौन-सी साधना है? यह कोई साधना नहीं है, इससे कोई धर्म नहीं मिलता है, बल्कि धर्म तो तुम्हें ज्यादा तब मिलता, जब बूढ़ी माई गिर पड़ी, तो उसे उठा दो कि चल मैया ! तू चलकर के अभिषेक कर ले, मैं मदद कर देता हूँ। वह मैया अभिषेक कर लेती है। मुझे भले ही अभिषेक करने के लिए अवसर नहीं मिला, अवकाश नहीं मिला, पर मैंने एक को अभिषेक करने के लिए अवसर प्रदान कर दिया, यह मेरी मुक्ति के लिए सशक्त साधना बन जाती है।

यहाँ असंभूति और संभूति की बात कही गयी। असंभूति व्यक्तिगत साधना है और संभूति सामाजिक साधना है। असंभूति में, व्यक्तिगत साधना में ईश्वर न हो, तो हम स्वार्थी हो जाते हैं। मानो हम धर्म के क्षेत्र में स्वार्थी हो गये, हम साधना के क्षेत्र में स्वार्थी हो गये। मैं संभूति के क्षेत्र में आगे बढ़ूँ और अगर ईश्वर न हो, तो केवल नाम, यश तक सिमट कर रह जायेंगे और कुछ नहीं। मैं समाज को सुधारने की घोषणा करता हूँ, पर यदि ईश्वर से न जुड़े हों, तो कौन समाज को सुधारेगा? इसलिए कहा गया कि इस सामाजिक साधना में बहुत क्षमता है, पर वह क्षमता कब प्रकट होती है, जब उस सामाजिक साधना को हम ईश्वर के साथ जोड़ दें। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन का सुन्दर आदर्श वाक्य दिया है – 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' – अपनी मुक्ति और जगत के कल्याण के लिये। अपनी मुक्ति यह असंभूति की उपासना है और जगद्धिताय च – जगत के कल्याण के लिए, सामाजिक साधना है। इन दोनों के भीतर में ईश्वर तत्त्व एक केन्द्र के रूप में जुड़े हैं। यहाँ आत्मनो मोक्षार्थम् के साथ जगद्धिताय च जुड़ा हुआ है। किन्तु यदि मैं अपनी मुक्ति के लिए चेष्टा करूँ और वहाँ पर ईश्वर न हो, या मैं केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में घिर जाऊँ, मुक्ति-मुक्ति भले कहता रहूँ, पर यह क्या मुक्ति है ! मैं भले ईश्वर की बात करता रहूँ, अपनी साधना को ही देखता रहूँ, तो यह कोई ठीक-ठीक ईश्वर को जीवन में उतारना नहीं है। मैं मुँह से भले ही ईश्वर की बात करता रहूँ, पर मुझे ईश्वर की प्रतीति हुई ही नहीं है। ठीक यही बात सामाजिक साधना के क्षेत्र में इन दो त्रिकों के माध्यम से कही गयी। **(क्रमशः)**

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१४)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

वैदिक शिक्षा का प्रयास

इसी धन्वतरी-धाम से लगी हुई एक वैदिक पाठशाला भी थी। काठियावाड़ के विभिन्न ग्रामों के निर्धन बालक ऋक्, यजु:, साम तथा अथर्व वेद पढ़ने हेतु वहाँ आकर मुष्टिभिक्षा द्वारा प्राप्त अन्न को स्वयं पकाकर दिन में केवल एक बार उदरपूर्ति करते हुए वेदपाठ किया करते थे।

वैदिक शिक्षकों को हस्तपाठ तथा स्वरपाठ के अतिरिक्त वेदों के एक भी शब्द का अर्थज्ञान नहीं था। परन्तु शुक्ल-यजुर्वेद के शिक्षक उदात्त-अनुदात्त-स्वरित सुरों के साथ हाथ हिलाते हुए अपने छात्रों के साथ गुरु-गम्भीर ध्वनि में वेदपाठ किया करते। उस समय अपने पुलकित शरीर के साथ मैं जिस अभूतपूर्व आनन्द का उपभोग करने लगा, उसे भाषा के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रत्येक शिक्षक के पास बैठकर मैं चारों वेदों का पाठ सुना करता था। परन्तु दुख की बात यह थी कि शिक्षकों में से किसी को भी वेदांग का ज्ञान नहीं था।

विभिन्न स्थानों से आने वाले इन निर्धन ब्राह्मण-विद्यार्थियों का कष्ट देखकर मैंने वाराणसी के रईस विद्वान् प्रमदादास मित्र की सहायता से एक अन्नसत्र खोल दिया। इसी सत्र से प्रतिदिन निर्धन छात्रों को उनकी आवश्यकता के अनुसार आटा, दाल, घी आदि दे दिया जाता था। छुट्टियों के समय छात्रगण चले गये और तब अन्नसत्र भी बन्द हो गया।

मैंने भी शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिन शाखा) का छात्र होकर हस्तपाठ तथा स्वरपाठ सीखा। इस प्रकार वैदिक पाठशाला में वेदों के अर्थज्ञ शिक्षकों का अभाव देखकर मुझे मर्मान्तक पीड़ा हुई। तब मैं सोचता कि वेद-वेदांग में पारंगत विद्वान् वाराणसी में जरूर मिल जायेंगे; मैं प्रयास करूँगा।

वेदज्ञ द्रविड़ ब्राह्मण

इसी धन्वन्तरी-धाम में मदुरा के एक द्रविड़ वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण चातुर्मास्य कर रहे थे। वे प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर स्नान आदि के बाद मिट्टी के खूब छोटे-छोटे सैकड़ों शिवलिंग बनाते। फिर उसी से चतुर्भुजाकार वेष्ठनी और बीच में उन्हीं छोटे-छोटे शिवलिंगों द्वारा निर्मित गौरीपट्ट के साथ एक बड़ा शिवलिंग बनाते। अपराह्न में करीब दो बजे तक पूजा करके स्वपाक भोजन आदि करने के बाद वे मेरे पास बैठकर शास्त्रीय चर्चा करते।

वे कृष्ण-यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के विद्वान् थे। कृष्ण-यजुर्वेदीय शाखा का थोड़ा-बहुत अर्थबोध भी उन्हें था। मुझे प्राय: ही चण्डी (दुर्गा-सप्तशती) पाठ करने की आदत थी। मेरा चण्डीपाठ सुनकर वे कहते, "हम लोग जैसे वेदपाठ में दक्ष हैं, वैसे ही बंगाली लोग चण्डीपाठ के लिए प्रसिद्ध हैं। तुम्हारा चण्डीपाठ सुनकर मैं मुग्ध हो गया हूँ।"

इसके बाद उन्होंने बताया कि बचपन से ही उनके सगे-सम्बन्धी तथा द्रविड़ ब्राह्मण-शिक्षक निमंत्रित होकर बंगाल जाया करते थे। उन लोगों की शास्त्रीय चर्चा महीने भर से भी अधिक चला करती थी। बाद में वे लोग विपुल मात्रा में सीधा आदि सामग्री के साथ घर लौटते और इस निमित्त से उन्हें काफी धन भी प्राप्त होता था। इस प्रकार प्राप्त सीधा आदि से काफी दिनों तक उनके घरों में भोजन आदि की व्यवस्था हो जाती थी।

वे जब इस प्रकार बड़ी उदारतापूर्वक बंगाल की प्रशंसा करते, तो एक दिन मैंने उनसे कहा, "महाराज, क्या आप नहीं जानते कि बंगाली लोग मछलियाँ बहुत खाते हैं? बंगाली लोग बड़ी युक्ति से मछलियों को पकड़ने के लिये सारे दिन तालाब के किनारे बैठे रहते हैं, इसे क्या आप ठीक मानते हैं?"

यह सुनने के बाद उन्होंने कृष्ण-यजुर्वेद के एक मंत्र की आवृत्ति की। मंत्र पूरा तो याद नहीं है, परन्तु उसकी शुरुआत इस प्रकार है – **"अग्नेस्त्रयो ज्यायांसो भ्रातर-आसन्, ते देवेभ्यो हव्यं वहन्तः प्रमीयन्तु ..."** और इसके अन्त में था, **"धिया धिया त्वा वध्यः स्युः।"** कथा इस प्रकार है। अग्नि का एक नाम हव्यवाहन है। अग्नि के ऊपर ही देवताओं के लिये हवि (घी) वहन करने का भार है। अग्नि

के तीन बड़े भाई हवि वहन करते-करते मर गये । अग्नि भी इसी (मृत्यु के) भय से जाकर एक जलाशय में छिप गये । उन्होंने सोचा, ''तीन भाइयों की जब ऐसी गति हुई, तो अकेले मैं भला कितने दिन हवि को वहन कर सकूँगा? शीघ्र ही मेरा भी वैसा ही परिणाम होगा ।'' उधर देवतागण कुछ दिनों तक तो बिना खाये रह गये, परन्तु उसके बाद पूरे दल-बल के साथ मर्त्यलोक में अग्नि की खोज करते हुए घूमने लगे । देवताओं के भय से अग्नि जिस जलाशय में छिपे हुए थे, देवताओं के वहीं आ पहुँचने पर कुछ मछलियों ने जल के ऊपर मुख निकालकर छिपे हुए अग्नि की बात देवताओं को बता दी । मछलियों द्वारा सूचना देकर अग्नि को पकड़वा देने के कारण अग्नि बहुत ही नाराज हुए और उन्होंने उनको शाप देते हुए कहा, ''जैसे तुम लोगों ने स्वत:प्रवृत्त होकर मुझे पकड़वा दिया, इसी प्रकार तुम लोग भी मर्त्यलोक में विभिन्न प्रकार से वध्य होकर रहोगी; लोग तुम्हें खोज-खोजकर बड़ी युक्ति के साथ मारेंगे ।''

इसके बाद वे बोले, ''बंगाली लोग तो वैदिक अनुशासन मानकर ही चलते हैं ।'' उनके मुख से मत्स्याहारी बंगालियों के पक्ष में ऐसे वैदिक प्रमाण की बात सुनकर मैं अत्यन्त विस्मित हुआ ।

जामनगर में बहुत-से जैन मन्दिर हैं । जैनियों के प्रभाव से वैदिक हिन्दू भी जैन-भावापन्न हो गये हैं । प्रकट रूप से किसी में भी जैनियों के विरुद्ध कुछ भी करने की क्षमता नहीं थी । आचार की दृष्टि से वहाँ जैनियों तथा वैष्णवों का ही प्राधान्य है ।

धन्वतरी-धाम के मणिशंकर विट्ठलजी ने एक दिन इन्हीं ब्राह्मण से पूछा, ''पाप का क्या प्रायश्चित्त है?'' उन्होंने उनको 'आश्विन पशुयाग' करने को कहा, जिसमें दोनों अश्विनीकुमारों के निमित्त दो बकरों का बलिदान करके यज्ञ करना पड़ता है । यह सुनकर मणिशंकरजी उन वेदज्ञ ब्राह्मण पर अत्यन्त नाराज हो गये ।

ब्रह्मचारीजी

धन्वन्तरी-धाम में रहते समय मैं प्राय: ही शाम के समय टहलने के लिए एक ब्रह्मचारी के आश्रम में जाया करता था । जब मैं जामनगर में था, उस समय जामनगर के राजा जामसाहब विभा थे । इन लोगों को 'जड़ाइया' या 'जड़ेजा' राजपूत अर्थात् यदुवंशी कहते हैं । जाम विभा का इन ब्रह्मचारी से बड़ा लगाव था । राज्य की ओर से उन्हें बहुत-सी जमीन-जायदाद भी दी गयी थी । वहाँ विष्णु-मन्दिर में चाँदी के बड़े भारी चौखट तथा दरवाजे लगे थे । ठाकुरजी की सेवा के लिये विभिन्न प्रकार के सोने-चाँदी के बर्तन थे । एक जोड़ी अच्छे बैलों की गाड़ी और एक टमटम भी था । देवोत्तर सम्पत्ति से देवसेवा के लिये काफी मात्रा में अनाज प्राप्त होता था ।

ब्रह्मचारीजी की काफी आयु थी । वे एक संन्यासी परमहंस के शिष्य थे । उनका कोई शिष्य-सेवक न होने के कारण उन्होंने कई बार मुझसे अनुरोध किया कि वे सारी सम्पत्ति मेरे नाम लिखकर मुझे मन्दिर की गद्दी पर आसीन करा देंगे । परन्तु मैं उनसे कहता, ''पानी तो चलता भला, साधु तो रमता भला । मैं परिव्राजक हूँ, मन्दिर का महन्त नहीं बन सकूँगा ।''

जामसाहब विभा जब उस मन्दिर के बगल से होकर टहलने जाते, तो 'बम-बम' की आवाज करते और ब्रह्मचारीजी भी एक खिड़की के पास खड़े होकर 'बम-बम' कहकर उत्तर देते । जामसाहब का उनके प्रति बड़ा प्रेम था ।

जामसाहब विभा

जामसाहब विभा बेपरवाह आदमी थे । वे महल में न रहकर नगर के बाहर एक विशाल भवन में निवास करते थे । वे प्रतिदिन सुबह नगर के महल में आकर रानी लोगों के साथ भेंट कर जाते थे । कभी-अभी अपराह्न में भी आते । उनके अंगरक्षक लोग घोड़ों पर चढ़कर उनके पीछे-पीछे आते ।

एक दिन रास्ते में एक सुन्दर बालिका को भिक्षा माँगते हुए घूमते देखकर उन्होंने चोबदार को उसे अपने पास लाने को कहा । वह लड़की भयभीत होकर आयी और जामसाहब के पास खड़ी हो गयी । पूछने पर पता चला कि वह सिन्ध प्रदेश की मुसलमान है । मुसलमान जानकर भी उन्होंने उसे महल के भीतर जाकर रहने को कहा । वह बोली, ''हुजूर, मेरी और भी पाँच बहने हैं; हम लोग आजीविका की खोज में सिन्ध से यहाँ आये हैं ।'' यह सुनकर जामसाहब ने उन सभी को बुलवाया और बोले, ''तुम छहों बहने मेरे अन्त:पुर में रहो ।''

नि:सन्तान होने के कारण जामसाहब ने एक पुत्र को गोद लिया था । इन छह मुसलमान रानियों में से प्रमुख का नाम था धनबाई, फिर जानबाई, आदि आदि । दत्तक लेने के बाद धनबाई को सन्तान की सम्भावना होने पर जामसाहब ने दरबार बुलाकर सभी से कह दिया कि उसके

शेष भाग पृष्ठ ८० पर

चित्त की क्रियाएँ और क्लिष्ट-अक्लिष्ट वृत्तियाँ

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

चित्त की क्रियाएँ

चित्त में दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं : (१) प्रत्यय (२) संस्कार। चेतन मन पर जो वृत्तियाँ, विचार, भावनाएँ इत्यादि उठती रहती हैं, उन्हें प्रत्यय भी कहा जाता है। जैसे ध्यान की परिभाषा में कहा गया है – **'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'**। अर्थात् हृदय, भ्रूमध्य आदि किसी एक स्थान पर एक ही प्रकार की वृत्ति या विषय को निरन्तर बनाये रखना ध्यान है।

चित्त की दूसरी क्रिया है संस्कार। चेतन मन पर जो भी प्रत्यय उठते रहते हैं, जो भी वृत्तियाँ उठती रहती हैं, उनके संस्कार चित्त-भूमि में पड़ते हैं। ये संस्कार भी दो प्रकार के होते हैं। व्युत्थान संस्कार और निरोध संस्कार। सामान्यत: अप्रशिक्षित मन में व्युत्थान संस्कार ही मुख्य रूप से रहते हैं। व्युत्थान का अर्थ है उठना, बहिर्मुखी होना, क्रियाशील होना इत्यादि। क्षिप्त और विक्षिप्त भूमियुक्त में व्युत्थान संस्कार ही रहते हैं। ये संस्कार चेतन मन को चंचल बनाये रखते हैं। चित्तवृत्तियों को थोड़ा निरुद्ध करने का प्रयत्न करने पर मन भले ही थोड़ी देर के लिए शान्त हो जाय, पर वह व्युत्थान संस्कारों के कारण पुन: चंचल और बहिर्मुखी हो जाता है।

चित्तवृत्ति-निरोध, इन्द्रिय-संयम, वासना-त्याग, भगवन्नाम का एकाग्रता के द्वारा जप आदि साधनाओं के कारण जो मन:संयम होता है, उसके कारण चित्तभूमि में निरोध संस्कार पड़ते हैं। ये धीरे-धीरे व्युत्थान संस्कारों को दूर करते रहते हैं। एक प्रतिष्ठित योगी में दीर्घ अभ्यास के कारण निरोध-संस्कारों का प्राबल्य होता है। इन संस्कारों के कारण योगी स्वाभाविक रूप से अन्तर्मुखी होता है और बाह्य क्रियाकलाप के बाद आसानी से ध्यानस्थ हो जाता है। योग साधना का उद्देश्य केवल कुछ समय के लिये मन को एकाग्र करना मात्र नहीं है। चित्त की भूमि को निरोध के संस्कारों के माध्यम से पूर्ण रूप से परिवर्तित करके यथासम्भव एकाग्र भूमि में परिणत करना है। अन्तत: इन संस्कारों का भी निरोध करना योग का लक्ष्य है।

पातंजल योगसूत्र में इन प्रत्ययों एवं संस्कारों के निरोध के अनुसार विभिन्न समाधियों का वर्णन है। जिन समाधियों में केवल चित्त के ऊपर उठ रहे प्रत्ययों का निरोध होता है, संस्कारों का नहीं, वे सम्प्रज्ञात समाधियाँ कहलाती हैं। प्रज्ञा का अर्थ चित्त में चेतन स्तर पर विद्यमान ज्ञान होता है। सम्प्रज्ञात समाधियाँ चार प्रकार की होती हैं और इन सभी में चित्त के चेतन स्तर पर प्रज्ञा और एकवृत्ति-प्रवाह बना रहता है। साथ ही निरोध संस्कार भी चित्त की गहराई में रहते हैं।

इसके आगे वाली अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि में चित्त के ऊपर अर्थात् चेतन भाग में कोई वृत्ति-प्रवाह नहीं होता। सभी वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं। तब क्या बचता है? केवल निरोध संस्कार रहता है। अत: ऐसी समाधि असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। लेकिन इन दोनों प्रकार की समाधि में चित्त में कुछ-न-कुछ चाहे वृत्ति प्रवाह तथा संस्कार या केवल संस्कार तो रहता ही है। अत: इन दोनों को सबीज समाधि कहा जाता है।

परन्तु तब निरोध संस्कारों का भी निरोध हो जाता है, तब चित्त की सतह पर और गहराई में दोनों में कुछ नहीं रहता। अत: इसे निर्बीज समाधि कहते हैं। यह योग की उच्चतम स्थिति है। इसके बाद योगी का व्युत्थान सम्भव नहीं है। वह इस समाधि से पुन: जाग्रतावस्था में नहीं लौटता और सदा के लिए मुक्त हो जाता है। श्रीरामकृष्ण की भाषा में उसका शरीर २१ दिन में छूट जाता है।

क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियाँ

पाँच प्रकार की वृत्तियों के वर्णन के बाद अब क्लिष्ट और अक्लिष्ट (कष्टकर और जो कष्टकर न हो) वृत्तियों पर विचार करते हैं। अगर आपको बुरा दृश्य दिखा, आपका मित्र बीमार हो गया, यह सत्य वृत्ति आपके मन में उठ रही है। यह सामान्य भाषा में कष्टप्रद है, लेकिन सांख्य-योग की दृष्टि से इसका अर्थ है – जो क्लेश से सम्बन्धित हो। क्लेश पाँच प्रकार के हैं – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश। वेदान्त में अविद्या का अर्थ अज्ञान है। हमारे स्वरूप के सम्बन्ध में, जगत के सम्बन्ध में, जीवन के लक्ष्य के सम्बन्ध में अज्ञानता। अस्मिता – हमारी बुद्धि में जो विचार उठ रहे हैं, वे हमसे भिन्न हैं। बुद्धि के साथ जब मन संयुक्त होकर बुद्धि में उठ रही वृत्तियों के साथ संयुक्त

होकर कहता है कि मैं वक्ता हूँ, मैं श्रोता हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं संन्यासी हूँ, तो यह 'मैं' का बुद्धि के साथ जुड़ना अस्मिता कहलाता है। अस्मिता अर्थात् Egoism। राग अर्थात् आसक्ति। द्वेष, जिसे हम नहीं चाहते उसके प्रति ईर्ष्याभाव। अभिनिवेश अर्थात् जीने की इच्छा। कैंसर हो जाए, बूढ़े हो जाएँ, डायलिसिस पर हों, तो भी दो-चार दिन और जीने की इच्छा करते हैं। कोई मरना नहीं चाहता। यह भी एक क्लेश है। ये पाँच क्लेश जन्म-मरण के चक्कर को बढ़ाते हैं। हमारी मुक्ति नहीं होने देते, कैवल्य के स्वरूप की प्राप्ति नहीं होने देते और जो द्रष्टा है, उसको स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं होने देते, जो योग का लक्ष्य है। जो भी वृत्तियाँ इन पाँचों क्लेशों को वर्धित करती हैं, उन्हें क्लिष्ट वृत्तियाँ कहते हैं और जो रोकती हैं, उन्हें अक्लिष्ट वृत्तियाँ कहते हैं।

योगशास्त्र ऐसे सुख में विश्वास नहीं करता, जो केवल विषयों से प्राप्त हो। योग की दृष्टि से दुख तो दुख है ही, परन्तु सुख भी चार कारणों से दुख है। पहला है परिणाम – भोगे रोगभयम् – भोग में रोग का भय है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि छोटे-छोटे भोग करके उनसे मुक्त हो जाओ। जितना भोग करेंगे, उतना रोग होता है। रात को रसगुल्ला खाया और सबेरे पेट खराब हो गया। दूसरा है, तप – भोग पाने के लिए मेहनत करनी पड़ती है, जैसे ऑफिस में आठ घंटे बैठना। तीसरा है, संस्कार – भोग की आदत, नहीं मिलेगा, तो कष्ट होगा। चौथा है, गुणवृत्ति-विरोध – मन कुछ कहता है और शरीर उस स्थिति में नहीं हैं। खाने की इच्छा है, परन्तु डॉक्टर ने मना कर दिया, तो दुखी है, यह है गुणवृत्ति-विरोध। जो सुख है, वह भी विचारशील व्यक्ति के लिए दुख है।

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति पाँचों वृत्तियाँ दोनों ही तरह की हो सकती हैं। क्लिष्ट वृत्ति हो सकती है। आपका फोटो खींचा, आपने देखा, अच्छा आया। इससे हमारा 'मैं' बढ़ गया। आपकी फोटो से अविद्या बढ़ी। यह क्लिष्ट वृत्ति हो गई। आपने भोजन किया, पर कल की चिंता कि अब कब मिलेगा। इससे राग बढ़ गया। आपको कहीं सम्मान मिला, अब आपके मन में आता है कि अब कब मिलेगा, इससे आपके मन में द्वेष बढ़ गया।

इसके विपरीत सन्त के पास जाकर उनकी बातें सुनने से संसार से भिन्न वृत्तियाँ उठती हैं। ये अक्लिष्ट वृत्तियाँ हैं। यह है प्रत्यक्ष प्रमाण वृत्ति। दूसरी है अनुमान प्रमाण – जैसे रामकृष्ण आश्रम के बाहर बहुत सारी कारें खड़ी हैं, तो आपने अनुमान लगाया कि अन्दर सत्संग हो रहा है। यह अनुमान अक्लिष्ट वृत्ति है। इसका सम्बन्ध धर्म, अध्यात्म, भगवान से है। तीसरा प्रमाण है, आगम प्रमाण – रामायण, बाइबिल, वेद, पुराण, इनसे उठनेवाली वृत्तियाँ भी अक्लिष्ट होती हैं। इनके विपरीत आधुनिक आगम शास्त्रों से क्लिष्ट वृत्ति उठती है। लेखक लोग फ्रायड को भी प्रमाण के रूप में पढ़ते हैं। वे कहते हैं कि काम ही सबसे प्रबल है। काम का भोग करना ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है। या फिर मैनेजमेंट के शास्त्रों के अनुसार पैसा कमाना। इनसे क्लिष्ट वृत्ति उठती है। इस प्रकार आगम प्रमाणों से भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों ही तरह की वृत्तियाँ उठती हैं।

हमारा उद्देश्य इन मनोवृत्तियों को दूर करना है, परन्तु सभी वृत्तियों को एक साथ दूर करना आसान नहीं होता। इसलिए पहले आप क्लिष्ट वृत्तियों को दूर करें, बाद में अक्लिष्ट वृत्तियाँ अपने आप ही दूर हो जाएँगी।

दूसरी वृत्ति है, विपर्यय (मिथ्या ज्ञान) – जैसे, रस्सी में साँप। यह भी दोनों ही तरह का होता है। रस्सी में साँप का आभास होते ही हमारा राग-द्वेष बढ़ गया। यह है क्लिष्ट। इसके विपरीत मंदिर में जाते ही हम मूर्ति को भ्रमपूर्वक भगवान कह रहे हैं। लेकिन यह भ्रम कितना अच्छा है। पत्थर को शिव समझ कर पूजा करते-करते वहाँ पर शिव प्रकट हो जाते हैं। पंचदशी जैसे वेदान्त के शास्त्रों में दो प्रकार के भ्रम कहे गए हैं। प्रथम संवादी भ्रम और दूसरा विसंवादी भ्रम।

एक कमरा है और उसके छेद में से प्रकाश आ रहा है। रास्ते जाते व्यक्ति को भ्रम हुआ कि वहाँ मणि पड़ी हुई है। पास में गया तो अन्दर एक दीपक जल रहा था। दीपक के प्रकाश को मणि समझा और यदि दैवयोग से यह प्रकाश मणि का ही हो, तो वास्तव में मणि का ही प्रकाश मिल गया। इसे कहते हैं संवादी भ्रम, अर्थात् जिस भ्रम के पीछे सत्य विद्यमान हो।

चैतन्य महाप्रभु ने समुद्र को देखा तो यमुना की याद आ गई। उनके मन में तो श्रीकृष्ण और यमुना का ही विचार चल रहा था। गोपियों को भी भ्रम होता था। ऐसा भ्रम हो, तो हम सीधे भगवान के पास चले जाएँ, क्योंकि ईश्वर सर्वत्र विद्यमान हैं।

रास्ते में एक ठूँठ खड़ा है। चोर ने देखा, तो लगा कि पुलिस खड़ा है, पुलिस ने देखा, तो लगा चोर खड़ा है, भक्त ने देखा, तो लगा भगवान खड़े हैं। ठूँठ ने भगवान

का स्मरण करा दिया। यह अक्लिष्ट विपर्यय है। क्लिष्ट विपर्यय के तो बहुत से दृष्टान्त हैं। पानी का आभास हुआ। पास जाकर देखा, तो रेगिस्तान है।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे मन की वृत्ति ऐसी होनी चाहिए, जिससे हम जो भी वस्तु देखें, उसमें भ्रम भी हो, तो भगवान का भ्रम हो, शुभ भ्रम हो, जिससे हमारी अविद्या दूर हो।

तीसरा है विकल्प (कल्पना)। कहा गया है – **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः** – अर्थात् शब्द से उत्पन्न, लेकिन उसके पीछे वस्तु नहीं है, यह कल्पना कहलाती है । जब आप उपन्यास पढ़ते हैं, तो आपके मन में चित्र बनता जाता है। अगर आप रामायण, महाभारत पढ़ रहे हैं, तो आपके मन में भी वैसा ही चित्र बनता चला जाएगा। सारी की सारी लीला आपके मन में आती चली जाएगी। यह पूर्ण रूप से कल्पना है। इसमें देश और काल का कोई सम्बन्ध नहीं है। कल्पना में वृन्दावन चले जाइए। आपके मन में श्रीकृष्ण की लीला आएगी। लेकिन इन कल्पनाओं से आपके मन का राग, द्वेष, अभिनिवेश कम होगा।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि क्लिष्ट कल्पनाएँ उतनी ही बुरी हैं, जितना बुरा कर्म करना है। अक्लिष्ट कल्पना करके हम जीवन को सार्थक बना सकते हैं। अपने इष्ट के साथ कल्पना में रहना भी शुभ है। इसे लीला-चिंतन कहते हैं। ध्यान भी एक प्रकार की कल्पना ही है।

चतुर्थ है निद्रा। यह भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट होती है। निद्रा भी दो प्रकार की होती है। स्वप्न सहित और स्वप्न रहित निद्रा। स्वप्न भी दो तरह के होते हैं। क्लिष्ट और अक्लिष्ट। स्वप्न रहित सोने का भी एक तरीका है। सोने से पहले अशुभ या पाप पूर्ण चिन्तन न करके भगवान का जप करके सोएँ या भजन की केसेट सुनकर सोएँ। आप देखेंगे कि केसेट समाप्त होने के बाद भी आपके मन में भजन सबेरे उठने तक चल रहा है। क्योंकि अचेतन मन में वह निरन्तर चलता रहेगा। सही नींद सोना भी पुण्यों से मिलता है। इस तरह से हम निद्रा को भी क्लिष्ट या अक्लिष्ट बना सकते हैं।

पाँचवीं वृत्ति है – स्मृति। हमारे जीवन में बहुत-सी गलतियाँ हो जाती हैं। कहते हैं – एक बुरे आदमी का भी भविष्य अच्छा हो सकता है। आप गुजरी-बुरी बातों का चिंतन न करें, उसे पूर्ण रूप से भूल जायें। आप शुभ चिंतन करें। कहा गया है – **पूर्वकृतानां दुरिताणाम् चिन्तनम् सर्वतोभावेन परिवर्जनीयम्।**

आप कहेंगे कि इनका प्रायश्चित्त होना चाहिए। यदि आप उसका स्मरण नहीं करते हैं, तो प्रायश्चित्त भी आवश्यक नहीं है।

एक बार ईसा मसीह के पास एक महिला को गाँव के लोग लेकर गए कि यह पापिनी है, हमारे धर्मशास्त्र तो ऐसे लोगों के लिए कहते हैं कि पत्थर से मारो, आप क्या कहते हैं। इस पर ईसा मसीह ने पुराने शास्त्रों का खंडन न करते हुए कहा कि आपके शास्त्र तो सही हैं, पर वे ही लोग इसको पत्थर मारें, जिन्होंने पाप नहीं किया हो। यह बात सुनकर एक-एक कर सभी लोग खिसक गये। बुजुर्ग तो सबसे पहले निकले। हमारा जीवन उलटा होता है। हम जैसे-जैसे बूढ़े होते जाते हैं, हमारी पाप की गठरी बढ़ती चली जाती है, जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए। जब सभी चले गए और महिला खड़ी रही, तो उन्होंने महिला को कहा कि तुम भी चली जाओ। सभी ने माफ कर दिया है। किन्तु ऐसा दुबारा मत करना और जो किया है, उसका विचार भी मन में मत लाना।

इसलिए प्रायश्चित्त भी आवश्यक नहीं है, यदि अतीत का बुरा पूर्ण रूप से भूल जाएँ तो। श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि पापी-पापी कहते हुए हम पापी हो जाते हैं। इसलिए स्मरण करना है, तो शुभ वृत्तियों का करें। चित्तवृत्ति-निरोध बहुत दूर की बात है। पहले क्लिष्ट वृत्तियों को दूर करें। ○○○

पृष्ठ ७७ का शेष भाग

यदि पुत्र हुआ, तो वे उसी को अपने विशाल राज्य का उत्तराधिकारी बनायेंगे ।

मुसलमान रानी के गर्भ से पुत्र का जन्म होने के बाद उन्होंने अपने दत्तक पुत्र रनजित् सिंहजी को वार्षिक ५०,००० रुपयों का अधिकारी बनाकर राज्य के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया । बाद में रनजित् सिंह जी कच्छ तथा काठियावाड़ के कुछ यदुवंशी राजाओं की पृष्ठपोषकता में इंग्लैंड गये और ब्रिटिश अधिकारियों के समक्ष जाम विभा के विरुद्ध मुकदमा दायर किया । उसी समय रनजित् सिंह ने क्रिकेट के खेल में अतुल ख्याति प्राप्त की । उनके क्रिकेट में उपलब्धि की बात विश्वविख्यात है । **(क्रमशः)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३८)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत-से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – महाराज, विशिष्टाद्वैत किसे कहते हैं?

महाराज – यह विशिष्ट अद्वैत है। विशिष्ट का क्या अर्थ है? अर्थात् जो किसी दूसरे से भिन्न, पृथक् करता है। वैसे ही रामानुजाचार्यजी का विशिष्टाद्वैत शंकराचार्यजी के अद्वैत से भिन्न है। यहाँ द्वैत है, किन्तु विशिष्ट है। कैसे विशिष्ट है? ''**चित्-अचित्-विशिष्टयोः अद्वैतः विशिष्टाद्वैतः।**'' वही 'चित्' है, वही 'अचित्' है – दोनों एक हैं। ये दोनों पृथक् नहीं हैं। चित् अर्थात् चैतन्य भी वही परमेश्वर है और अचित् अर्थात् जड़ भी वही परमेश्वर है। चित्-अचित् अर्थात् चेतन और जड़ सब कुछ वह परमात्मा ही है। किन्तु चेतन और जड़ सभी उसके अंश हैं। यह संसार चित्-अचित्, उस परमात्मा का शरीर है, वह परमेश्वर शरीरी है। इस प्रकार एक और अद्वैत है। संसार में जितने चेतन और जड़ पदार्थ हैं, सभी उसके अंश या शरीर हैं। ''**जीव-जगत्-विशिष्टयोः ब्रह्म**'', यहाँ ब्रह्म जीव-जगत-विशिष्ट है।

प्रश्न – महाराज ! श्रीमाँ ने निर्वासना होने को कहा है। निर्वासना होने से ही मुक्ति होगी। इसे थोड़ा समझाइये।

महाराज – हाँ, मैं भी भक्तों को ऐसे ही कहता हूँ। थोड़ी देर चुप रहकर अचानक कहता हूँ – अशान्ति दूर करने का उपाय है। यह सुनकर सभी लोग विस्मित हो जाते हैं। चौकन्ना होकर मेरी ओर देखते हुये मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करते हैं। मैं कहता हूँ, अशान्ति दूर करने का सहज उपाय है – कोई इच्छा मत रखो, आशा मत रखो। यह सरल उत्तर या उपाय सुनकर सबका मुख उतर जाता है। वास्तव में इच्छा-वासना से ही सारी अशान्ति है।

– महाराज, वासना का मूल क्या है?

महाराज – अपूर्णता का बोध होना वासना की जड़ है। जब भी मैं अपने को अपूर्ण बोध करता हूँ, तभी पूर्ण करने की इच्छा करता हूँ। यदि मैं अपने को पूर्ण बोध करूँ, तो कोई अभाव-बोध नहीं रहेगा और उसे पूर्ण करने की कोई बात भी नहीं उठती। आप्तकाम की वासना कहाँ होती है?

– महाराज ! क्या सभी वासनायें पूर्ण होती हैं?

महाराज – नहीं।

– तो उपाय क्या है?

महाराज – हाय-हाय करना, नहीं तो अभाव-बोध दूर करना।

– महाराज, यह अभाव बोध कैसे दूर होगा?

महाराज – कोई श्रेष्ठतर वस्तु मिल जाने से निम्न वस्तु स्वयं ही छूट जाती है। गुड़ खाते-खाते शक्कर खाने की इच्छा होती है। शक्कर खाने के बाद गुड़ खाने की इच्छा नहीं होती है, वैसे ही है। इसलिये जो उच्च वस्तु है, उसकी इच्छा करना ही अच्छा है।

प्रश्न – महाराज ! ठाकुर ने कहा है – ''जो राम, जो कृष्ण, वही अभी इस शरीर में रामकृष्ण हैं। हाँ, लेकिन तुम्हारे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।'' ठाकुर ने 'वेदान्त की दृष्टि से नहीं' क्यों कहा?

महाराज – वेदान्त की दृष्टि से सभी ब्रह्म हैं। राम, कृष्ण, रामकृष्ण सभी वही एक ब्रह्म हैं। किन्तु जो व्यक्ति राम थे, जो श्रीकृष्ण थे, वही व्यक्ति श्रीरामकृष्ण के रूप में

आये हैं। यहाँ वेदान्त का जो एक तत्त्व है, उस दृष्टि से एक नहीं है। व्यक्ति के रूप में एक है।

प्रश्न – महाराज ! हम साधु-ब्रह्मचारियों को भक्तों के प्रति कैसी भावना रखनी चाहिए?

महाराज – हमलोगों को ऐसी भावना रखनी चाहिए – वे लोग भी ठाकुर के भक्त हैं और हमलोग भी ठाकुर के भक्त हैं, वे लोग गृहस्थी में रहकर ईश्वर-दर्शन का प्रयास कर रहे हैं और हमलोग बाहर से प्रयास कर रहे हैं।

एक बार एक भक्त ने किसी ब्रह्मचारी से कुर्सी ला देने को कह दिया था। इससे वह ब्रह्मचारी बहुत नाराज हो गया। क्योंकि उसने सोचा कि वह व्यक्ति गृहस्थ होकर उसे कुर्सी लाने का आदेश दे रहा है। यह बात उसने पत्र लिखकर बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्दजी) को बताई। बाबूराम महाराज ने उत्तर में लिखा, "हमारे ठाकुर सम्मान-यश-प्रतिष्ठा हेतु नहीं आये थे। तुमलोग भी सम्मान-प्रतिष्ठा के भिखारी मत होना।"

ठाकुर को माली समझकर फूल तोड़कर देने के लिए योगीन महाराज ने आदेश दिया था, वह घटना भी ऐसी है।

प्रश्न – महाराज ! क्या स्थितप्रज्ञ और गुणातीत की अवस्था एक जैसी है?

महाराज – स्थितप्रज्ञ होने पर गुणातीत होता है। दोनों का लक्षण एक समान ही है। किन्तु दोनों शब्द तो एक नहीं है। स्थितिप्रज्ञ अर्थात् जिसकी प्रज्ञा स्थिर है। उसकी प्रज्ञा अब विचलित नहीं होती। गुणातीत का अर्थ है तीनों गुणों के अतीत।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

(गीता २/५५)

स्थितप्रज्ञ के कई लक्षण बताये गये हैं। सिद्धों के लक्षणों की साधकों को साधना करनी चाहिए। साधना करते-करते साधक उनमें प्रतिष्ठित होता है और सिद्ध होता है। साधनावस्था में उनमें प्रतिष्ठित नहीं होता, किन्तु सिद्धावस्था में वह उसमें प्रतिष्ठित हो जाता है। तब पुनः विचलित नहीं होता है।

प्रश्न – 'हिरण्यगर्भ' के सम्बन्ध में कुछ कहिए।

महाराज – हिरण्यगर्भ में पड़ गया, इस कहानी को जानते हो?

– नहीं महाराज, नहीं जानते हैं। घटना को बताइये तो।

महाराज – शुभानन्द जी ढाका में थे। एक दिन वहीं के दो पण्डित उनसे तर्क करने आये। मठ के दो साधुओं की इच्छा थी कि महाराज विजयी हों। जो भी हो, तर्क आरम्भ हुआ। इधर इन दोनों साधुओं को कुछ काम से बाहर जाना था, किन्तु जा नहीं पा रहे हैं। क्योंकि तर्क में अन्तिम परिणाम क्या हुआ, यह देखने की इच्छा थी। चर्चा होते-होते हिरण्यगर्भ का प्रसंग आया और इसमें से एक साधु दूसरे को कह रहे हैं – "चलो, चलो हिरण्यगर्भ में पड़ गया है।" यानि महाराज हिरण्यगर्भ के विषय में दक्ष हैं। अब उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता।

जो भी हो, गर्भ माने जठर – उदर। उदरस्थ सन्तान होती है। हिरण्य माने प्रथम सृष्ट जीव। हिरण्यगर्भ प्राप्ति की बात है, जानते हो तो? यह कोई पद नहीं है। शास्त्र में इसके सम्बन्ध में बड़े विनोदी प्रश्न हैं। क्या हिरण्यगर्भ की प्राप्ति वरिष्ठता क्रम से होती है? नहीं, तो कैसे होती है? कई लोग हिरण्यगर्भ की प्राप्ति हेतु प्रयास कर रहे हैं। यदि यह कोई एक पद है, तो सभी लोग तो एक पद पर आसीन नहीं हो सकते हैं। उसके बाद, एक हिरण्यगर्भ के जीवनकाल में बहुत से कल्प हैं। इसलिये किसी के एक बार हिरण्यगर्भ पद पर बैठ जाने से दूसरे किसी को शीघ्र ही कोई आशा नहीं रह जाती। असली बात है – हिरण्यगर्भ कोई पद नहीं है, यह एक अवस्था है। जो योग्य अधिकारी हैं, वे सभी उस ऐक्य का बोध करते हैं। यदि हिरण्यगर्भ के साथ ऐक्य बोध करो, तो एक साथ एक से अधिक के साथ ऐक्य-बोध करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। उसके बाद हिरण्यगर्भ समष्टि जीव है। समष्टि जीव का अर्थ बोझा बाँधने जैसा समष्टि नहीं है। एक-एक करके बोझा बाँधने जैसा समष्टि नहीं है। वह सब कुछ मिलाकर केवल एक है। **(क्रमशः)**

जिस ज्ञान से चित्तशुद्धि होती है, वही यथार्थ ज्ञान है, बाकी सब अज्ञान है।

– श्रीरामकृष्ण देव

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (३०)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

विपत्ति के समय अन्य उपाय

विपत्ति के समय प्रार्थना, नामस्मरण और ध्यान करने से भी मन में परिस्थिति का सामना करने की शक्ति आती है। आन्तरिक स्थिति बदल जाती है। इसलिए जल्दबाजी में कोई कदम उठाने से पहले चुपचाप भगवान का नाम लेना सरलतम उपाय है।

इसके अतिरिक्त दूसरे गौण उपाय भी हैं, जिनका इन सब उपायों के साथ-साथ आचरण करने से मानसिक स्थिति में शीघ्रता से परिवर्तन होता है। उन उपायों में से एक है, महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में बताया गया उपाय – ''**वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्**'' (२/३३) – अर्थात् प्रतिबन्धक विचारों को रोकने के लिए उनसे विरोधी विचारों का चिंतन करना। यदि आत्महत्या के विचार आ रहे हैं, तो जीवन कितना सुन्दर है, मूल्यवान है, प्रेमपूर्ण है आदि विचार करने से नकारात्मक विचारों का जोर कम हो जाता है। निराशा के विचारों को आशास्पद विचारों से, नकारात्मक विचारों को सकारात्मक विचारों से, दूर कर सकते हैं। यदि नकारात्मक विचार पीछा नहीं छोड़ रहे हैं, तो मन को उसकी रुचि की वस्तुओं में लगाओ। उसके लिये भजन-संगीत या सुगम संगीत को एकाग्र होकर सुनो। हमारे संगीत के स्वरों में मन को शान्त करने की अद्‌भुत शक्ति है।

इसके अतिरिक्त जिसका मन बहुत विषाद से भर गया हो और जिसे कहीं चैन नहीं मिल रहा हो, ऐसे व्यक्ति को आग्रहपूर्वक स्वादिष्ट वस्तु खिला देने से भी उसका मन शान्त हो जाता है, आवेग कम हो जाता है। जब व्यक्ति भावनाओं के अतिरेक में डूबा हुआ हो, तब वह मनोमय कोष में होता है और इस कोष में उसका मन आवेग में होने के कारण नियंत्रित नहीं होता है। इस मन को यदि सूचनाओं द्वारा विज्ञानमय कोष में ले जाया जाय, तो मन की स्थिति बदल जाती है, परन्तु यह तो सिद्ध योगी ही कर सकते हैं। वैसे योगी पुरुषों को तो ऐसा प्रश्न उठता ही नहीं। परन्तु सामान्य मनुष्यों के मन का स्तर नहीं बदल सकते हैं, इसलिए यदि भरपेट भोजन करवाया जाय, तो उसकी चेतना अन्नमय कोष में आ जाती है और भाव का अतिरेक दूर हो जाने से फिर वह स्वस्थता से विचार कर सकता है।

इस प्रकार इन मुख्य और गौण उपायों द्वारा विपत्ति की स्थिति में मन को स्वस्थ कर सकते हैं। लेकिन एक बार विपत्ति चली जाती है, तो दुबारा नहीं आएगी, ऐसा जीवन में होता नहीं है। विपत्तियाँ, कठिनाइयाँ तो आती रहती हैं, परन्तु मन की स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि कैसी भी परिस्थिति आये, लेकिन मन अशान्त न हो, मानसिक सन्तुलन न खोए। ऐसी मन की स्थिति प्राप्त करने के लिये, क्या करना चाहिए?

किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति को विधेयात्मक भाव अपनाना चाहिए। जब सब कुछ खो दिया हो, तब भी कुछ तो बच ही गया होता है, तब उस बचे हुए के ऊपर ध्यान केन्द्रित करने से विचलित नहीं होंगे। ग्लास आधा खाली है, इस तरह देखने के बदले ग्लास आधा भरा हुआ है, देखें। इतना ही दृष्टिकोण बदलना है, इससे मन को आगे बढ़ने की शक्ति और हिम्मत मिलती है।

विपत्ति के समय व्यक्ति को स्वयं में आत्मश्रद्धा जाग्रत करनी चाहिए। ''प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर दिव्यता सुप्त रूप में होती है, उसे जाग्रत करना ही मनुष्य का ध्येय है।'' स्वामी विवेकानन्द का यह वाक्य प्रत्येक विपत्ति से मनुष्य को ऊबार लेने की प्रचंड शक्ति रखता है। मानव के अन्दर स्थित दिव्यशक्ति को जाग्रत करने के बाद कोई भी समस्या उसे क्षुब्ध नहीं कर सकती है। इसलिए मनुष्य को हमेशा याद रखना चाहिए कि उसमें स्वयं में महान शक्ति विद्यमान है। इस शक्ति से अनजान होने के कारण ही उसे परिस्थिति का सामना करने से डर लगता है। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द सिंह के बच्चे की कहानी कहते हैं।

एक सिंहनी जंगल में से गुजर रही थी, तभी वहाँ से भेड़ों का झुण्ड जा रहा था। सिंहनी ने रास्ता पार करने के लिए छलांग लगाई, तब उसके पेट का बच्चा गिर पड़ा। सिंहनी रास्ते के उस पार गिरी और मर गई। वह बच्चा भेड़ के झुण्ड में बड़ा होने लगा। वह भेड़ की तरह ही घास खाने

लगा, बें-बें करने लगा। एक दिन एक सिंह वहाँ से गुजर रहा था। उसने भेड़ों के झुण्ड में एक छोटे-से सिंह-शावक को बें-बें करते देखा, तो उसे आश्चर्य हुआ। वह बच्चे के पास गया और कहा, ''तू सिंह है, फिर भी तू भेड़ की तरह बें-बें क्यों करता है?'' तब उस सिंह-शावक ने बें-बें करते हुए कहा, ''मै तो भेड़ हूँ, सिंह नहीं।'' बड़े सिंह ने उसे बहुत समझाने का प्रयत्न किया, तब भी वह नहीं माना। फिर सिंह उसे तालाब के किनारे ले गया और कहा, ''मूर्ख, इस पानी में तू अपनी परछाई देख। तेरा चेहरा भेड़ जैसा है या मेरे जैसा, सिंह जैसा है?'' छोटे सिंह ने जब अपना चेहरा देखा, तब उसका अज्ञान का पर्दा दूर हो गया। उसे समझ में आ गया कि वह भेड़ नहीं, सिंह है। फिर उसने सिंह की तरह गर्जना की। वह निडर हो गया और बाद में जंगल का राजा बन गया।

इस कहानी द्वारा स्वामी विवेकानन्द समझाते हैं कि जब हम अपनी आन्तरिक शक्ति को पहचानेंगे, मिथ्या भ्रम को झटककर फेंक देंगे, तभी सिंह के बल का अनुभव करेंगे। स्वामी विवेकानन्द के इन शब्दों में निर्बलता, हताशा, निराशा, चिंता को हटाकर मनुष्य में अन्तर्निहित अनन्त शक्ति को जाग्रत करने की प्रचंड सामर्थ्य है। वे कहते हैं, ''तुम तो ईश्वर की संतान हो। अक्षय सुख के अधिकारी हो। पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। अरे ओ, पृथ्वी की दिव्य आत्माओ ! तुम पापी? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है। मनुष्य की प्रकृति को हमेशा के लिए लांछन लगाने जैसा है। अरे ओ सिंहो ! खड़े होओ और हम भेड़ हैं, इस भ्रम को झटककर फेंक दो। तुम तो अमर आत्मा हो, मुक्त हो, नित्य हो। तुम जड़ पदार्थ नहीं हो, शरीर नहीं हो, जड़ पदार्थ तुम्हारा दास है, तुम उसके दास नहीं हो।'' मनुष्य के अन्दर विद्यमान आत्मशक्ति को जाग्रत करने को विवेकानन्द आह्वान करते हैं। फिर आत्मशक्ति हताशा और निराशा के घनघोर बादलों को नष्ट करके मनुष्य को चिरशान्ति के प्रदेश में ले जाती है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''कोई भी जीवन कदापि निष्फल नहीं हो सकता है। संसार में निष्फलता जैसी कोई वस्तु नहीं है। भले सैकड़ों बार मनुष्य स्वयं को हानि पहुँचाए, भले हजारों बार ठोकर खाए, परन्तु अन्त में उसे अनुभूति होनी ही है कि मैं स्वयं ईश्वरस्वरूप हूँ।'' **(क्रमशः)**

बन जाऊँ मैं भी गंगाजल

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

ठाकुर तो बड़े निराले थे, सद्‌गुणियों को अपनाते थे।
जो तमोगुणी पापी-तापी, उसको तो दूर भगाते थे।।
जो तजे गये ठाकुर द्वारा, उनका भी भाग्य बड़ा न्यारा।
आँचल माता का जो थामा, वात्सल्य उड़ेल दिया सारा।।
चाहे दूषित ललनायें हों, या दस्यु कर्म करता कराल।
जो पहुँच गया सम्मुख उनके, सबका जीवन कर दिया निहाल।।
काली को भजते थे ठाकुर, श्रीमाँ स्वयं ही काली थी,
बस नाम सारदा परिवर्तित, मुख पर ममता की लाली थी।।
तन छोड़ दिया पर मन से तुम,बच्चों का पालन करती हो।
सुमिरन करते पल भर में ही, माँ हित–संधारण करती हो।।
प्रारब्ध-भोग का कैदी हूँ, नित जला रहा यह संसारानल।
माँ, कृपा करो जो एक बार तो, बन जाऊँ मैं भी गंगाजल।।

वह मानव कहलाया

जितेन्द्र कुमार तिवारी

जीव मात्र की सेवा से है जीवन सार्थक होता,
जैसे गंगा-सलिल हमेशा पापों को है धोता।
दुखियों के दुख को हरना है मानवता की सेवा
प्राणिमात्र की पीड़ा लखकर सुजन सदा है रोता।
जगती में सब अपने ही हैं कोई नहीं पराया,
उसका जीवन सार्थक होता बाँट-बाँट जो खाया।
वैसे तो हर जीव हमेशा अपनेपन में जीते,
लेकिन जो है परहितकारी वह मानव कहलाया।
करुणा को विस्तारित करना, पछताओगे वरना,
मानवता की सच्ची सेवा, पर की पीड़ा हरना।
सदा स्वार्थ को लेकर जीना कभी न अच्छा होता,
पर के हित में अर्पित कर दो अपना जीना मरना।
जीव मात्र की सेवा करना, हो संकल्प हमारा,
जगती में कोई भी प्राणी फिरे न मारा-मारा।
नहीं स्वार्थ में हम डूबे हों, सबका हित हम देखें,
जो केवल अपना ही देखे, वह होता हत्यारा।।

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (८)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक श्रृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भों को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

यदा पश्य: पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति।।३.१.३।।

जब उन दर्शन करने योग्य स्रष्टा, ईश्वर, पुरुष, परमात्मा रूपी स्वर्णिम ब्रह्म का दर्शन होता है – तब ऋषि की भले तथा बुरे – सारी कर्म-रूपी अशुद्धियाँ धुल जाती हैं। (बुरे कर्मों के समान ही भले कर्म भी अशुद्धियाँ हैं।) इसके बाद वे उन पवित्र ब्रह्म के साथ पूर्ण साम्य को प्राप्त हो जाते हैं।

ऋषि जानते हैं कि वह सभी आत्माओं की आत्मा है – वही आत्मा – सभी प्राणियों के माध्यम से अभिव्यक्त हो रही है। वही नर है, वही नारी है, वही गाय है, वही कुत्ता है – वही सब पशुओं में है और वही पाप तथा पापी में है, वही संन्यासी है, वही सम्राट् में है और वही सर्वत्र है।

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति
विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावा-
नेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।।३.१.४।।

इसे जानकर ऋषि मौन हो जाते हैं। (वे किसी की निन्दा नहीं करते, किसी को भी भला-बुरा नहीं कहते, और किसी का अमंगल नहीं सोचते।) उनकी सारी कामनाएँ आत्मा में ही समाहित हो जाती हैं; वे परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं देखते; और यही सर्वोच्च ब्रह्मज्ञानी का लक्षण है। वे ही इन सभी वस्तुओं को लेकर खेल रहे हैं। सर्वोच्च देवताओं से लेकर निकृष्ट कीटों तक – सभी विभिन्न रूपों में, वे ही विराजमान हैं।[१]

'जो अपने भीतर ही आनन्द पाता है, जो अपने भीतर ही पाने की इच्छा करता है, वस्तुत: उसी ने अपने जीवन का पाठ पढ़ा है।' यही वह महान पाठ है, जो हमें अनेक जन्मों, स्वर्गों तथा नरकों में से गुजरते हुए सीखना है; और वह पाठ यह कि अपनी आत्मा के परे कुछ भी माँगने या चाहने-योग्य नहीं है। 'आत्मा की प्राप्ति ही सबसे बड़ी प्राप्ति है।' 'मैं मुक्त हूँ' – अत: सुखी होने के लिए मुझे अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। 'मैं चिर काल से अकेला ही रहा हूँ, क्योंकि मैं मुक्त था, मुक्त हूँ और सदैव मुक्त रहूँगा।' यह वेदान्त है।[२]

न संख्याबल, न धन, न विद्वत्ता, न वाक्चातुर्य और न अन्य कुछ – बल्कि पवित्रता, आदर्श जीवन, एक शब्द में कहें, तो अनुभूति तथा आत्म-साक्षात्कार को ही विजय मिलेगी। हर देश में ऐसे सिंह-समान दर्जन-भर लोगों की जरूरत है; जिन्होंने अपने स्वयं के बन्धन तोड़ डाले हैं, जिन्होंने 'अनन्त' का स्पर्श कर लिया है, जिनका चित्त ब्रह्म में लगा है; जो न धन की परवाह करते हैं, न बल की और न मान की – ये सिंह-हृदय लोग संसार को हिला डालने के लिए पर्याप्त होंगे।

यही रहस्य है। योग-प्रवर्तक पतंजलि कहते हैं, 'जब मनुष्य समस्त अलौकिक शक्तियों का परित्याग कर देता है, तभी उसे धर्ममेघ नामक समाधि प्राप्त होती है।'[३] ऐसा व्यक्ति परमात्मा का दर्शन करता है, परमात्मा बन जाता है और दूसरों को भी वैसा ही बनने में सहायता करता है। मुझे बस इसी बात का प्रचार करना है। जगत् में बहुत-से मतवादों का प्रचार हो चुका है। पुस्तकें करोड़ों हैं, परन्तु हाय, आचरण में छटाक-भर भी नहीं दिखता![४]

१. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २४१

२. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३१७

३. द्रष्टव्य – योगसूत्र, ४.२८ – प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघ:समाधि: – तत्त्वों के विवेकज्ञान से उत्पन्न ऐश्वर्य से भी जिन्हें वैराग्य हो जाता है, उनका विवेकज्ञान सर्वथा प्रकाशमान रहने के कारण उन्हें धर्ममेघ समाधि प्राप्त हो जाती है। (वही, खण्ड १, पृ. २१६)

४. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ४, पृ. ३३६-३७

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।३.१.५।।

सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्।।३.१.६।।

उस ब्रह्मज्ञान को भक्ति, ध्यान और ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त करना होगा। 'सत्य की ही जय होती है, मिथ्या की कभी नहीं। ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग केवल सत्य से होकर ही रहता है' – केवल वहीं – प्रेम और सत्य विद्यमान हैं।[५]

सत्य की तुलना मैं एक अनन्त शक्तिशाली क्षयकर पदार्थ से करूँगा। वह जहाँ भी गिरता है, जलाकर अपना स्थान बना लेता है – यदि नरम वस्तु पर गिरे, तो तत्काल और यदि कठोर पाषाण पर गिरे, तो धीरे-धीरे; परन्तु वह जलाता अवश्य है।... 'सौन्दर्य और यौवन का नाश हो जाता है, जीवन तथा धन का नाश हो जाता है, नाम और यश का भी नाश हो जाता है, पर्वत भी चूर-चूर होकर मिट्टी हो जाते हैं, मित्रता और प्रेम भी नश्वर हैं, एकमात्र सत्य ही चिरस्थायी है।' हे सत्यरूपी प्रभो, तुम्हीं मेरे एकमात्र पथप्रदर्शक बनो।... 'हे संन्यासी, निर्भय होकर तुम दुकानदारी-वृत्ति छोड़ दो, शत्रु-मित्र में भेद न रखकर सत्य में दृढ़प्रतिष्ठ रहो और इसी क्षण से इहलोक, परलोक और भविष्य के सब लोकों का, उनके भोग तथा उनकी असारता का त्याग कर दो। हे सत्य, तुम्हीं मेरे एकमात्र पथप्रदर्शक बनो।'[६]

धैर्यपूर्वक चरित्र गढ़ना, सत्यप्राप्ति के लिए कठोर परिश्रम – इन्हीं का मनुष्य-जाति के भावी जीवन पर प्रभाव पड़ेगा। ... पूर्ण निष्कपटता, पवित्रता, विशाल बुद्धि और सर्वजयी इच्छाशक्ति। इन गुणों से सम्पन्न मुट्ठी भर लोगों को यह काम करने दो और सारे संसार में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जायेगा। ... संख्याबल का कोई महत्त्व नहीं। कुछ दृढ़संकल्प, सच्चे तथा उत्साही लोग साल भर के अन्दर इतना कार्य कर सकते हैं, जितना कि एक जनसमूह सौ सालों में भी नहीं कर सकता। यदि किसी के शरीर में गर्मी है, तो वह उसके पास आनेवाले लोगों को भी महसूस होगी। यही नियम है। जब तक हममें गर्मी है, सत्य की प्रेरणा है, निश्छलता तथा प्रेम है, तब तक हमें सफलता से कोई नहीं रोक सकता।

मेरा अपना जीवन उतार-चढ़ाव से परिपूर्ण रहा है, परन्तु मैंने सर्वदा इन चिरन्तन शब्दों की सत्यता का अनुभव किया है – सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः[७] – 'केवल सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। ईश्वर की ओर जाने का मार्ग सत्य में से होकर गुजरता है।'... पवित्र और सर्वोपरि निष्ठावान बनो; क्षण भर के लिए भी प्रभु में अपनी आस्था मत खोओ; और तुम्हें प्रकाश की प्राप्ति होगी। जो कुछ सत्य है, वही सर्वदा बना रहेगा; और जो सत्य नहीं है, उसे कोई नहीं बचा सकेगा। दूसरे लोग चाहे कुछ भी क्यों न सोचें या करें; तुम कभी अपनी पवित्रता, नैतिकता तथा भगवत्प्रीति की ध्वजा को मत झुकाना।

सभी तरह की गुप्त संस्थाओं से सावधान रहना। वे नर-नारियों को अपवित्र, दुर्बल तथा संकीर्ण बनाती हैं; और दुर्बल लोगों में इच्छाशक्ति तथा कर्मठता का अभाव होता है। गुप्त संस्थाओं के साथ कोई सम्बन्ध मत रखना। रहस्यों के प्रति मिथ्या आकर्षण का उदय होते ही, उनके सिर पर आघात करना होगा। जो कोई थोड़ा भी अपवित्र है, वह कभी धार्मिक नहीं हो सकता। पवित्रता ही पृथ्वी पर तथा स्वर्ग में सर्वोच्च तथा दिव्यतम शक्ति है।.. कोई तुम्हारा सहयोगी बना या नहीं – इस बात की क्षण भर के लिये भी परवाह मत करना। बस, प्रभु का हाथ पकड़ने में भूल न हो; और इतना ही यथेष्ट है।[८]

चट्टान की तरह दृढ़ बने रहो। सत्य की सदा विजय होती है। श्रीरामकृष्ण की सन्तानें सत्यनिष्ठा में स्थित रहें; बस, सब कुछ ठीक हो जायेगा।... पूर्ण रूप से शुद्ध, दृढ़ और निष्कपट रहो। यदि तुमने श्रीरामकृष्ण के शिष्यों में कोई विशेषता देखी हो, तो वह यह है कि वे पूर्णतः निष्कपट हैं।... युगों के उद्यम से चरित्र का गठन होता है। निराश मत होना। सत्य का कभी लोप नहीं होता; सम्भव है कि वह लम्बे समय तक कूड़े के ढेरी में दबा पड़ा रहे, परन्तु देर-सबेर वह अवश्य प्रकट होगा। सत्य अविनाशी है, पुण्य अविनाशी है और पवित्रता अविनाशी है।[९]

५. वही, खण्ड ७, पृ. ५३
६. वही, खण्ड ३, पृ. ३७८-७९
७. वही, खण्ड ४, पृ. ३३५
८. वही, खण्ड ५, पृ. ३७१
९. वही, खण्ड ३, पृ. ३४४

शेष भाग पृष्ठ ८९ पर

अद्भुत बालक और अद्भुत माँ

श्रीमती विद्योत्तमा वर्मा

सेवानिवृत्त जिला शिक्षाधिकारी, जोधपुर, राजस्थान

''मुझमें ज्ञान का जो विकास हुआ है, उसके लिए मैं अपनी माता का चिर ऋणी हूँ।'' विश्व में प्रेम का, धर्म का, वेदान्त का, सेवा का डंका बजानेवाले स्वामी विवेकानन्द ने यह बात कही थी। उनकी माता भुवनेश्वरी देवी धर्मानुरागिणी, मधुरभाषिणी, गम्भीर प्रकृति की महिला थीं। अपने ऐश्वर्य-सम्पन्न विराट परिवार का, अपनी बौद्धिकता एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार द्वारा कुशल संचालन करती थीं। वे एक ओर रामायाण, महाभारत, भागवत आदि धर्मग्रन्थों का प्रतिदिन पाठ करती थीं, तो दूसरी ओर अपने सुप्रसिद्ध अधिवक्ता पति श्री विश्वनाथ दत्त के साथ समसामयिक विषयों पर चर्चा कर तत्कालीन गतिविधियों से भी परिचित रहती थीं। वे अपने इष्ट 'शिव' की पूर्ण आस्था, श्रद्धा एवं तन्मयता से नियमित पूजा करती थीं। परिवार एवं आस-पास की महिलाएँ उनसे अपनी समस्याओं का समाधान पूछने, चर्चा करने आती रहती थीं तथा भुवनेश्वरी देवी को आदर्श एवं अनुकरणीय महिला मानती थीं।

पर्याप्त सुख साधनों से युक्त विशाल परिवार के मध्य रहकर भी भुवनेश्वरी देवी के हृदय में एक कसक थी, एक पीड़ा थी कि वे पुत्र सुख से वंचित थीं। इस कामना की पूर्ति के लिये वे प्रतिदिन शिव मन्दिर में कातर भाव से प्रार्थना करतीं, कठोर व्रतों का पालन करतीं, तदुपरान्त भी मन को शान्ति नहीं मिली। एकाएक उन्हें दत्त परिवार की एक वृद्ध महिला का ध्यान आया, जो काशी में रहती थीं। भुवनेश्वरी देवी ने उन्हें अपनी मन:स्थिति का वर्णन करते हुए पत्र में अनुरोध किया कि वे काशी के वीरेश्वर शिव मन्दिर में उनकी ओर से पुत्र-प्राप्ति हेतु प्रतिदिन हवन एवं पूजा करवाने की व्यवस्था करने की कृपा करें। उनकी इच्छानुसार कार्य होने की सूचना प्राप्त कर वे हर्ष विभोर हो गईं। वे स्वयं भी अब अधिक समय शिवार्चन में बिताने लगीं। एक दिन पूजा के पश्चात् भुवनेश्वरी देवी ध्यानमग्न हो गईं और घण्टों व्यतीत होने पर निद्रा ने उन्हें आ घेरा। स्वप्न में कैलासवासी देवाधिदेव शिव ने उन्हें दर्शन देकर पुत्र रूप में जन्म लेने का वचन दिया। नींद खुलने पर भुवनेश्वरी देवी ने आनन्द विभोर होकर शिवशंकर कैलासपति की जयजयकार करते हुए साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

स्वामी विवेकानन्द की माता भुवनेश्वरी देवी

जिस प्रकार देव-माता अदिति ने महर्षि कश्यप के समक्ष यह आकांक्षा व्यक्त की कि उन्हें ऐसा पराक्रमी, शूरवीर, स्वाभिमानी पुत्र चाहिए, जो विदेशी राजा को निष्कासित कर अपने देश को परतन्त्रता से मुक्त करा सके। इसके परिणाम स्वरूप तेजस्वी कुशल संगठक, वीर पुत्र वामन का जन्म हुआ। जीजाबाई नित्य माँ भवानी से प्रार्थना करतीं, ''हे देवी माँ! मुझे पुत्र दे, जो स्वराज्य की स्थापना करे, गौ-ब्रह्मणों का पालन करे, हिन्दू धर्म की, मन्दिरों की रक्षा करे और माँ-बहनों के शील को सुरक्षित रखे।'' देवी माँ ने शिवाजी के माध्यम से उनकी इच्छापूर्ति की। इसी प्रकार भुवनेश्वरी देवी ने अपने आराध्य शिव से विनती की कि उन्हें ऐसा पुत्र मिले, जिससे उनका कुल धन्य हो जाए। शिव ने स्वप्न के अनुसार उनकी कोख से नरेन्द्र के रूप में जन्म लिया, जिन्होंने विवेकानन्द के रूप में संन्यासी बन कर, दत्त कुल ही नहीं, सम्पूर्ण भारत राष्ट्र को धन्य कर समग्र विश्व का कल्याण किया तथा वेदान्त की पुन: स्थापना कर दी।

पौष शुक्ल सप्तमी संवत् १९२० अर्थात् १२ जनवरी, सन् १८६३ ई. को उषा-काल से कुछ मिनट पूर्व ६ बज कर ३३ मिनट पर भुवनेश्वरी देवी की कोख से विश्वविजयी पुत्र का जन्म हुआ। एक ओर दत्त भवन में नर-नारी आनन्दमग्न हो, हर्षोल्लास से शंख की मंगल ध्वनि कर रहे थे, तो दूसरी ओर लाखों व्यक्ति गंगाजी में संक्रान्ति-स्नान कर रहे थे। इतना ही नहीं, घर-घर में पौष-पर्व का आयोजन हो रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों सब मिलकर नवजात शिशु की सादर अभ्यर्थना कर रहे हों। शिशु के प्रपितामह राममोहन दत्त सर्वोच्च न्यायालय में सुप्रसिद्ध अधिवक्ता थे तथा उनके भवन में बारह माह में तेरह त्यौहारों का भव्य आयोजन होता था। उनके पुत्र दुर्गाचरण भी अधिवक्ता तो

बन गए, परन्तु उनमें अधिक धनोपार्जन एवं ऐश्वर्य की लिप्सा नहीं थी, वरन् धर्मचर्चा, सत्संग आदि में लीन रहते थे। फलत: मात्र २५ वर्ष की अवस्था में ही हिन्दी भाषी वेदान्ती साधुओं के प्रभाव से संन्यास ग्रहण कर अपनी धर्मपत्नी एवं शिशुपुत्र विश्वनाथ को छोड़कर गृहत्यागी हो गए।

विश्वनाथ न्यायालय के कार्यों के साथ-साथ साहित्य, इतिहास, धर्मग्रन्थ आदि के अध्ययन में भी रुचि रखते थे। अच्छी आय के साथ-साथ सेवकों, घोड़ा-गाड़ी, अतिथि-सत्कार, शरणागत-पालन आदि में इतना व्यय हो जाता था कि कुछ राशि संचित करने के स्थान पर वे ऋण लेकर भी ये कार्य सम्पन्न करते थे। पुत्र के नामकरण के समय उसका मुख पितामह संन्यासी दुर्गाचरण से मिलता हुआ देखकर परिवार के लोगों ने 'दुर्गादास' नाम सुझाया, परन्तु माता ने अपने स्वप्न का स्मरण कर शिशु का नाम 'वीरेश्वर' रखा। परिवारजनों ने इसका संक्षिप्तीकरण कर 'बिले' कहना आरम्भ कर दिया। अन्नप्राशन संस्कार के समय राशि आधारित नामकरण हुआ 'नरेन्द्रनाथ दत्त, जो सर्वसाधारण एवं शिक्षा संस्थानों में प्रचलित हुआ। शैशव से बाल्यावस्था में आते-आते नरेन्द्र बहुत उद्धत हो गए। वे किसी के वश में नहीं आते थे। माता ने विचार कर कि शिव जलाभिषेक से सन्तुष्ट होते हैं, अत: बालक को शान्त करने के लिये वे 'शिव शिव' उच्चारण करती हुई नरेन्द्र के सिर पर पानी डालना आरम्भ करतीं, तब वे शान्त हो जाते। अपनी इच्छापूर्ति में बाधा आने पर नरेन्द्र उच्च स्वर में रोने लगते, तब भुवनेश्वरी देवी कहतीं, 'बिले! यदि तू चिल्लाएगा, तो महादेव तुझे कैलास में प्रवेश नहीं करने देंगे।' यह सुनकर नरेन्द्र तुरन्त शान्त हो जाते।

अपराह्न में भुवनेश्वरी देवी नरेन्द्र को गोद में बैठाकर, रामायण-महाभारत की कहानियाँ सुनाया करती थीं। अन्य महिलाएँ भी कथा सुनने के लिए आ जाती थीं। उद्धत चंचल बालक नरेन्द्र सीताराम की, राधाकृष्ण की कथाएँ सुनते हुए भक्ति-सरिता में अवगाहन करने लगते, और शान्तचित्त हो बैठे रहते। एक दिन वे सीताराम की युगल मूर्ति क्रय करके लाए और एक कक्ष में उसकी स्थापना कर, प्रतिदिन मूर्ति के सम्मुख ध्यान करने लगे। नरेन्द्र को अपने कोचवान से मित्रता थी। एक दिन बात-बात में कोचवान ने विवाह के सन्दर्भ में जीवन अशान्त करनेवाली अनर्गल बातें कह दीं, जिनसे विचलित होकर नरेन्द्र ने सीताराम की मूर्ति को कक्ष से हटाकर खिड़की से फेंक दिया और माता को मन की सारी दुविधा कह सुनाई। भुवनेश्वरी देवी ने बाल-मन को पढ़कर, शिवमूर्ति की स्थापना करवाई और उनकी पूजा-आराधना करने का सुझाव दिया। नरेन्द्र ने प्रतिदिन शिव-पूजा कर अपने साथियों सहित ध्यानस्थ होकर बैठना आरम्भ कर दिया। एक दिन बिले ने माँ से पूछा, "क्या मेरे दुष्ट होने के कारण 'शिव' ने मुझे अपने पास से हटा दिया है?" कुछ क्षण विचारोपरान्त कहा, माँ मेरे साधु बनने पर वे मुझे अपने पास बुला लेंगे क्या?" माता ने अनायास ही स्वीकारोक्ति दे दी। अब नरेन्द्र भस्म लगाकर ध्यान लगाने लगे, उस समय वे बाह्य जगत से निर्लिप्त हो, आनन्दानुभूति में लीन होने लगे।

रामायण की कथा में, नरेन्द्र को रामभक्त, महावीर हनुमान का चरित्र आदर्श लगा। जब माता ने बताया कि हनुमान जी अमर हैं, तब नरेन्द्र उनसे मिलने के लिए व्याकुल रहने लगे। एक दिन कथावाचक ने बताया "हनुमान को केले प्रिय हैं और वे केले के उद्यान में ही रहते हैं।" यह सुनकर नरेन्द्रनाथ वहाँ से सीधे केले के उद्यान में गए और केले के वृक्ष के नीचे रात भर बैठे रहे, परन्तु हनुमानजी से भेंट नहीं हुई। भुवनेश्वरी देवी ने समझाया, "आज हनुमानजी रामजी के किसी कार्य में व्यस्त होंगे, फिर कभी मिल जाएँगे।" यह सुनकर बालक का मन शान्त हो गया।

स्नातक परीक्षा समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् ही नरेन्द्र के पिता विश्वनाथ का हृदयाघात से असामयिक निधन हो गया। इससे परिवार की आर्थिक स्थिति डाँवाँडोल हो गई। विश्वनाथ ने धनार्जन तो बहुत किया, परन्तु ऐश्वर्यपूर्ण जीवन एवं शरणागतवत्सलता के कारण भोजन-वस्त्र की भी कठिनाई होने लगी। मित्रों ने भी मुँह मोड़ लिया। अग्रज होने के नाते नरेन्द्र भूखे-प्यासे रहकर नौकरी की खोज में भटकते रहे, परन्तु निरर्थक सिद्ध होता। ऐसी विकट परिस्थिति में अतिसहिष्णु, सौम्य, धैर्यशीला भुवनेश्वरी देवी भी विचलित हो गईं। एक दिन जब नरेन्द्र ईश्वर का नाम लेकर शय्या त्याग रहे थे, तब उन्होंने आवेश में कहा, 'चुप रह! बचपन से ही तू भगवान की रट लगाए हुए है, फिर भी तेरे भगवान ने ही आज ये दिन दिखाए हैं।" माँ के ये शब्द नरेन्द्र के हृदय में चुभ गए। नरेन्द्र ने रामकृष्ण के सम्मुख पारिवारिक स्थिति का उल्लेख करते हुए जगदम्बा काली से स्थिति सुधारने की प्रार्थना करने का निवेदन किया। उन्होंने नरेन्द्र को स्वयं ही काली माँ से यह माँगने का निर्देश दिया। काली के सम्मुख जाते ही नरेन्द्र ने सांसारिक आपदा को

भूलकर प्रार्थना की, ''माँ मुझे विवेक दो! वैराग्य दो! ज्ञान दो! भक्ति दो!'' ठाकुर को ज्ञात होने पर, उन्होंने दो बार काली माँ के पास और भेजा, परन्तु नरेन्द्र की प्रार्थना में कोई अन्तर नहीं आया। श्रीरामकृष्ण ने समझाया, सांसारिक सुख-भोग तुम्हारे भाग्य में नहीं है, परन्तु परिवार को सामान्य अन्न-वस्त्र का अभाव नहीं रहेगा।

१८८६ में श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद नरेन्द्र ने संन्यास लिया और वे स्वामी विवेकानन्द बन गये। उन्होंने भारत का भ्रमण किया और देश की दैन्य दशा देखकर बहुत दुखित हुये। वे सर्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेने के लिये १८९३ में अमेरिका गये। वहाँ शिकागो की धर्मसभा, अमेरिका, यूरोप, ईंग्लैण्ड आदि देशों में वेदान्त का डंका बजाकर १८९७ में पुन: भारत वापस आये। वे कोलम्बो, मद्रास आदि स्थानों में अनुयाइयों से मिलते हुये कोलकाता पहुँचे।

यद्यपि नरेन्द्र के संन्यासी होने के पश्चात् भुवनेश्वरी देवी को अपने लाड़ले 'बिले' से सीधा सम्पर्क नहीं था, तथापि वे अपने मन की बात स्वामीजी तक पहुँचा देती थीं। एक बार जननी ने तीर्थयात्रा की अभिलाषा व्यक्त की थी, वह बात स्वामीजी को स्मरण थी। अत: जब उनके पास ढाका से अनेक आमन्त्रण आए, तब उन्होंने अपनी जननी, उनकी संगिनियों तथा संन्यासी शिष्यों के साथ १८ मार्च को अपनी यात्रा आरम्भ की। ढाका पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत हुआ। बुधाष्टमी के उपलक्ष्य में सब लोग लांगलबंध जाकर ब्रह्मपुत्र के पवित्र जल में स्नान कर बहुत आनन्दित हुए। शिक्षित समुदाय के विशेष अनुरोध पर स्वामीजी ने दो घण्टों के दीर्घ भाषणों से सहस्रों श्रोताओं की उपस्थिति में कहा – ''ब्राह्म सुधारकों ने बिना अनुसंधान किए, मूर्ति पूजक हिन्दू समाज को गलतियों की समष्टि मान लिया, जो पूर्णत: अनुचित है। यदि तुम निराकार उपासना करना चाहते हो, तो करो, परन्तु दूसरों को गाली क्यों देते हो? स्वयं को हिन्दू बताने में लज्जित क्यों होते हो?''

ढाका से स्वामीजी सबको साथ लेकर गुवाहाटी होते हुए कामाख्या पीठ एवं चन्द्रनाथ के दर्शन करने गए। स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण कुछ दिन शिलांग में वैद्यराज से चिकित्सा करवाई, तत्पश्चात् कोलकाता लौट आए।

बाल्यावस्था में नरेन्द्र को कोई कठिन रोग हुआ था। उस समय माता भुवनेश्वरी देवी ने मनौती मानी थी कि नरेन्द्र के रोगमुक्त होने पर वे कालीघाट पर विशेष पूजा देगीं और श्रीकाली मन्दिर में पुत्र को लोट-पोट कराएँगी। नरेन्द्र के स्वस्थ होने पर वे मनौती की बात भूल गईं। अब जब मठ में, पुत्र के रुग्ण होने की सूचना प्राप्त हुई, तब जननी को एकाएक अपनी मनौती की स्मृति हो आई। उन्होंने अपनी मनौती पूर्ण करने की इच्छा का समाचार मठ में पुत्र के पास भेजा। स्वामीजी ने जननी के आदेशानुसार काली घाट की आदिगंगा में स्नान कर, भीगे वस्त्रों से श्रीकाली माँ के समक्ष तीन बार लोट-पोट लगाकर, सात बार मन्दिर की प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् सभा मण्डप के निकट खुले आँगन में बैठकर हवन की पवित्र अग्नि प्रज्वलित की और विधिवत् यज्ञ सम्पन्न किया। मठ के संन्यासीगण तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित जन, उनके चारों और बैठ कर दर्शन कर रहे थे। अद्वैतवादी संन्यासी होने पर भी स्वामीजी ने शास्त्रोक्त विधि से मूर्ति पूजा तथा देव-देवी आराधना करके प्रमाणित कर दिया कि इसमें भी सत्य विद्यमान है।

माता भुवनेश्वरी देवी ने पुत्र-प्राप्ति हेतु की गई तथा काशी विश्वनाथ मन्दिर में कराई गई पूजा-अर्चना, हवन से लेकर उसके जन्म के पश्चात् शैशवावस्था से संन्यास ग्रहण करने तक अपने 'बिले नरेन्द्रनाथ' को उच्च कोटि के सुन्दर संस्कार प्रदान किए। तत्पश्चात् स्वामी विवेकानन्द के अस्वस्थ होने पर दीर्घकाल पूर्व मानी गई मनौती की पूर्ति भी की। इतना ही नहीं, अपने आश्रितों, पड़ोसियों को भी सुसंस्कारित करने, आपात काल में सहायता करने में भी पीछे नहीं रहीं। ऐसी धर्मपरायणा, कर्तव्यनिष्ठ, मृदुभाषिणी, सुहृदया, वात्सल्यमयी, माता भुवनेश्वरी देवी के प्रति श्रद्धा सहित नमन। ○○○

पृष्ठ ८६ का शेष भाग

कर्म करो, सिंह बनो, प्रभु तुम्हारा कल्याण करेंगे। मैं मरते दम तक निरन्तर कर्म करता रहूँगा और मरने के बाद भी दुनिया की भलाई के लिए कर्म करता रहूँगा। असत्य की अपेक्षा सत्य एवं सद्भाव अनन्त गुना प्रभावी हैं। यदि तुममें ये गुण विद्यमान हैं, तो इनके वजन से ही तुम्हारा मार्ग निर्बाध हो जायेगा। ... मुझे चुपचाप शान्तिपूर्वक कर्म करना अच्छा लगता है और प्रभु हमेशा मेरे साथ हैं। यदि तुम मेरा अनुसरण करना चाहते हो, तो तुम्हें परम निष्ठावान, पूर्णत: नि:स्वार्थ और सर्वोपरि पूर्णत: पवित्र बनना होगा। मेरा आशीष तुम्हारे साथ है।[१०] **(क्रमश:)**

१०. वही, खण्ड ३, पृ. ३६९

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१२)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

१६ दिसम्बर, १८९६ को स्वामीजी कैप्टन और श्रीमती सेवियर के साथ भारत के लिए रवाना हुए। स्वामीजी और गुडविन इटली होकर भारत जाने के रास्ते में नेपल्स में मिलने वाले थे। गुडविन २१ दिसम्बर तक इंग्लैंड में ही रहे। वे अपनी माँ से बहुत स्नेह करते थे। इसलिए अपनी अन्तिम समुद्री यात्रा आरम्भ करने के पहले वे बाथईस्टन में कुछ फुरसत के दिन अपनी वयोवृद्ध माँ के साथ व्यतीत करना चाहते थे।

स्वामीजी ने इटली और विशेषकर रोम में आनन्दपूर्वक दिन बिताए। किन्तु वे भारत जाने के लिए आतुर थे। वे अपना कार्य शीघ्र आरम्भ करना चाहते थे। वे अधीरतापूर्वक साउदम्पटन (इंग्लैंड) से जहाज की राह देख रहे थे, जिसमें गुडविन आने वाले थे। जहाज के बंदरगाह पर पहुँचने पर स्वामीजी प्रफुल्लित हो गए और उच्च स्वर में कहा, ''अब, केवल भारत ही है, मेरा भारत !''

स्वामीजी, गुडविन और सेवियर दम्पती ३० दिसम्बर को 'प्रिन्ज रेजन्ट लुईटपोल्ड' जहाज द्वारा नेपल्स से रवाना हुए। गुडविन ने पोर्ट सेड से श्रीमती बुल को लिखा था, ''समुद्री यात्रा के विषय में कुछ लिखने जैसा नहीं है, किन्तु आपको सुनकर प्रसन्नता होगी कि नेपल्स में जब स्वामीजी मुझसे मिले, वे पूर्णरूप से स्वस्थ, उत्साही हैं और अपनी यात्रा में पूर्णतया मुग्ध हैं। वे सारा समय रोम के गुणगान से पूर्ण थे। वे कहते हैं कि रोम और दिल्ली ही इस विश्व के दो नगर हैं...स्वामीजी ने जहाज में कुछ प्रतियोगिताओं में भाग लिया और प्रसंगत: मुझे ही समिति का अध्यक्ष बनाया गया।''

१५ जनवरी, १८९७ को जब जहाज कोलम्बो पहुँचा, तब यात्रियों ने एक अविस्मरणीय दृश्य देखा कि भारत अपने धर्मगुरु को आदरांजलि अर्पित कर रहा है। गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखे १९ जनवरी के पत्र में इसका उल्लेख किया है, ''...स्वामीजी का कोलम्बो में अत्यन्त उत्साहपूर्वक स्वागत हुआ। भारत उनके लिए मानो उत्साह में मत्त हो गया हो। टेलिग्राम की भरमार हो गई है। लोग उन्हें साक्षात् ईश्वरावतार के रूप में मानते हैं, जैसा कि मैं उन्हें मानता हूँ और वे निरन्तर उनकी पूजा-अभ्यर्थना कर रहे हैं। रविवार की सन्ध्या को मन्दिर में विशाल जनसमूह जिसे देखा न गया हो एकत्रित हुआ। उन्होंने स्वामीजी की पूजा की और उद्‌घोष किया, 'जय जय महादेव' । स्वामीजी मुझे अपने ब्रह्मचारी के रूप में साथ रखते हैं, जो मेरे लिए बड़े भाग्य की बात है।''

२२ जनवरी को गुडविन ने पुन: श्रीमती ओली बुल को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने स्वामीजी के भव्य स्वागत का विस्तृत वर्णन किया है, ''हम १५ जनवरी, शुक्रवार को चार बजे कोलम्बो पहुँचे। हमने देखा कि दूर से स्टीम-लॉन्च पर सवार एक संन्यासी आ रहे हैं। वे स्वामी निरंजनानन्द थे...। हमें किनारे पहुँचने पर बहुत समय लगा। जब हम वहाँ पहुँचे, तो देखा कि लोगों की बहुत भारी भीड़ हमारी प्रतीक्षा कर रही है और स्वामीजी की घोर जयध्वनि हो रही है। इसके बाद स्वामीजी घोड़ागाड़ी में चढ़े। गाड़ी के कोचवान लाल रंग का भव्य बाना पहने हुए थे। हम गाड़ी में धीरे-धीरे शहर से सिनेमोन गार्डन गए। वहाँ सेन्ट बेर्न नामक नवीन घर, जिसका पहले कभी उपयोग नहीं किया गया था, हमारे आवास के लिए निश्चित किया गया था। मैंने 'हमारे' शब्द कहा, क्योंकि कोलम्बो रिसिप्शिन कमिटि ने स्वामीजी के लिए जो व्यवस्थाएँ की थीं, उनमें हम भी सम्मिलित थे। आवास-गृह तक का लगभग एक चौथाई मील का मार्ग ताड़ के पत्तों से सजाया गया था और दोनों तरफ बाँस के बहुत ही सुन्दर विजय-तोरण बनाए गए थे, जिस पर लिखा हुआ था, 'स्वामी विवेकानन्द का स्वागत है'। हर जगह ध्वज और पताकाएँ थीं। मैं आपको कहना चाहूँगा कि शोभायात्रा की अगुवाई वहाँ की स्थानीय वादक-मण्डली, ढोलकवाले इत्यादि ने की। जिन पवित्र छत्र और पताकाओं का उपयोग केवल देवता अथवा मूर्ति की शोभायात्रा के लिए किया जाता है, उन्हें भी यहाँ लाया गया था। स्वामीजी की

पूजा साक्षात् भगवान के रूप में हो रही थी (और मैं यह कहना चाहूँगा कि मेरी दृष्टि में यह सब उचित ही था)... जैसे ही स्वामीजी ने लोगों की विशाल भीड़ के साथ मन्दिर में प्रवेश किया, तब लोगों ने 'जय जय महादेव' की तुमुल जयध्वनि की और तालियाँ बजाईं...। यदि आप मुझे माफ करें, तो अपने बारे में दो बातें मुझे बड़ी रोचक लगीं। यहाँ के लोग और विशेषकर विद्वत्त समाज के लोग यह देखकर बड़े प्रसन्न हैं कि स्वामीजी अपने साथ कुछ अंग्रेज शिष्य लाए हैं। बात यह हुई कि सेवियर दम्पती और विशेषकर मेरी तरफ लोगों का काफी ध्यान आकर्षित हुआ। हमारे ऊपर हमेशा गुलाबजल छिड़का जाता था और चन्दन लगाया जाता था। एक व्यक्ति ने स्वामीजी के साथ मेरी फोटो लेने का भी आग्रह किया, ताकि वह स्वामीजी के साथ मेरी भी पूजा कर सके ...इसके अलावा मन्दिर के बाहर मुझे भीड़ ने घेर लिया था। वे लोग मुझे टकटकी लगाए देख रहे थे और मेरे विषय में हर प्रकार के प्रश्न पूछ रहे थे।''

किन्तु इस आनन्द के वातावरण में एक कर्कश-भरा स्वर भी था। जब स्वामीजी की पूजा-अभ्यर्थना के लिए उन्हें मन्दिर ले जाया गया, तब गुडविन को बाहर रुकना पड़ा। गुडविन ने सहजतापूर्वक इस बात का उल्लेख श्रीमती बुल से किया, ''मुझे मन्दिर के बाहर रहना पड़ा, क्योंकि यूरोपियों को अन्दर जाने की अनुमति नहीं थी। किन्तु मैं अन्दर का सब कुछ देख पा रहा था।'' उस समय कट्टरपंथी हिन्दू पाश्चात्य लोगों की उपस्थिति को अशुभ मानते थे। इसके परिणामस्वरूप गुडविन को अनेक मन्दिरों, रसोई-घर अथवा भोजन-कक्ष में जाने की अनुमति नहीं थी। इन प्रचलित मान्यताओं के कारण गुडविन से जो अलग व्यवहार किया जाता था, उस समय तो उनको इतना बुरा नहीं लगा। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, स्वयं के बारे में एक विदेशी-मलेच्छ की भावना उन्हें अधिकाधिक चुभने लगी, वे निराश और दुखी होने लगे।
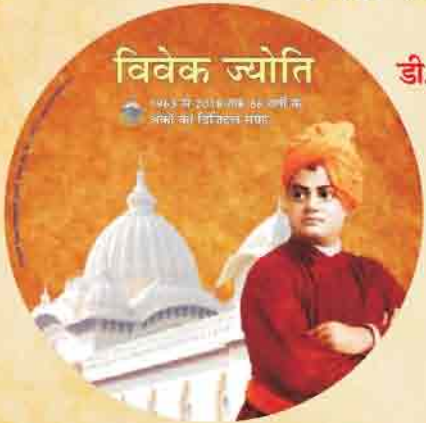
स्वामीजी पाम्बन, रामेश्वरम् और रामनाद जहाँ भी गए, उनका विजयोल्लास-स्वागत होता रहा। ३१ जनवरी को गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखा था, ''पाम्बन में ...रामनाद के राजा स्वयं स्वामीजी से मिलने आए। उन्होंने आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से स्वामीजी को प्रणाम किया और स्वामीजी की गाड़ी

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

सिद्धियाँ त्यागो

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

सिधि-विधि को त्यागिये, डुबो न दे मँझधार

एक बार गुरुनानक उत्तराखण्ड के उधमनगर के पास के खटिया ग्राम में गए। वहाँ उन्हें पीपल का एक सूखा पेड़ दिखाई दिया। उन्होंने पेड़ के नीचे विश्राम करने का निश्चय किया। शाम को अंधेरा हुआ और अचानक ठंडी हवाएँ चलने लगीं। थोड़ी ही दूरी पर धूनी जलती देख नानकजी ने मरदाना को धूनीवालों के पास से सूखी लकड़ियाँ लाने को कहा। मरदाना ने जब सूखी लकड़ियाँ माँगी, तो एक शिष्य ने कहा, ''अगर लकड़ियाँ चाहते हो, तो तुम्हें पहले हमारे गुरु गोरखनाथ जी का शिष्य बनना होगा।'' मरदाना चुपचाप खाली हाथ वहाँ से लौट आया। वापस आकर उसने नानक देव से सारी बात बताई, तो वे चुप रहे। मरदाना अन्य शिष्यों के पास बैठ गया। थोड़ी ही देर में उसे नींद आ गई। मध्यरात्रि को उसकी जब नींद खुली, तो धूनी जलती देख उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने जब गुरुनानक से धूनी के बारे में पूछा, तो उन्होंने बताया, ''रात को एक शिकारी को दया आई और उसने इसकी व्यवस्था कर दी।''

इधर जोर से आँधी आई और गोरखनाथजी की धूनी बुझ गई, तो उन्होंने उसी शिष्य से आग माँगकर लाने को कहा। उस शिष्य ने जब नानक देव से आग माँगी, तो उन्होंने उसे अपने गुरु की खड़ाऊँ लाने को कहा। शिष्य ने खड़ाऊँ लाकर दे दी और आग लेकर चला गया। गोरखनाथजी जानते नहीं थे कि खड़ाऊँ को गुरु नानक ने माँगी हैं। उन्होंने अपना अपमान माना और बदला लेने के लिए सिद्धि के बल पर आँधी लाकर पीपल के पेड़ को उखाड़ना चाहा। पेड़ छः-सात फुट ऊपर उठा ही था कि नानक देव ने भी सिद्धि द्वारा पेड़ को वहीं रोक रखा। तब गोरखनाथजी ने एक छोटे शिष्य को सिद्धि के बल पर नानक देव की धूनी के पास एक गड्ढा खोदकर उसमें खड़े रहने को कहा। उन्होंने यह भी कहा, 'जब मैं तुझसे पूछूँगा कि धरती किसकी है? तो उत्तर देना हमारी है।' वह गड्ढा खोदकर उसमें खड़ा हो गया। गोरखनाथजी ने वहाँ पहुँचकर जब उससे प्रश्न किया, ''यह धरती किसकी है?'' तो उसने उत्तर दिया, ''गुरुनानक की है।'' सुनते ही मारे क्रोध के उन्होंने शिष्य की ओर देखा, तो उसके प्राण पखेरू उड़ गए। तब गुरुनानक ने जब बालक की ओर दृष्टि फेरी, तो गड्ढा पानी से भर गया और शिष्य जीवित होकर बाहर आया। गोरखनाथजी जान गए कि ये कोई बड़े सिद्ध पुरुष हैं। वे डर गए कि ये उन्हें इस गडढे में डुबो न दें। दंडवत कर उन्होंने गुरुनानक से क्षमा माँगी। नानक देव ने खड़ाऊँ वापस करते हुए कहा, ''सिद्ध पुरुषों को कभी भी सिद्धियों का अभिमान नहीं करना चाहिये, न हि दम्भ करना चाहिये और न प्रतिशोध की भावना मन में उत्पन्न होने देनी चाहिये।'' फिर वे कुछ बुदबुदाये – ''सिध को बोलत सुभ बचन, धन नानक तेरी कमाई।''

सिद्धियाँ उच्च स्तर की होती हैं। कड़ी साधना के बाद ही साधक को ये प्राप्त होती हैं। सिद्ध पुरुष को मनसा-वाचा-कर्मणा इनके गलत प्रयोग के बारे में कभी नहीं सोचना चाहिये। ○○○

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

खींचने में स्वयं सहायता करने लगे...रामनाद में तो उत्साह चरम सीमा पर था। तोपों की गर्जना, मशालों के स्फुलिंग और आतिशबाजी हुई। लोकसंगीत और पाश्चात्य संगीत दोनों का आयोजन हुआ। स्वामीजी राज-पालकी में बैठे हुए थे और राजा के अंगरक्षक उनके साथ चल रहे थे ...'हर हर महादेव' का तुमुल जयघोष हो रहा था। हमें स्वामीजी पर बहुत गर्व हुआ और हमने अनुभव किया कि भारत में उनका क्या महत्त्व है। सभी लोग कहते हैं कि पाश्चात्य जगत में उनके योगदान ने अद्भुत आध्यात्मिक पुनरुत्थान का निर्माण किया है...स्वामी सारदानन्द जी को मेरा प्रेम निवेदित करना और उन्हें कहना कि मुझे उनकी याद आ रही थी कि यदि वे स्वामीजी के विजय-स्वागत में रहते, तो अच्छा होता। उन्हें यह भी कहिए कि स्वामीजी ५ मार्च (श्रीरामकृष्ण देव के जन्मतिथि समारोह) को मुझे कलकत्ता में संन्यास दीक्षा देंगे ...मैं आपसे यह कहना चाहूँगा कि मेरे संन्यासी बन जाने पर भी स्वामीजी के सेवक के रूप में मेरा कार्य पूर्ववत् निर्बाध चलता रहेगा। यहाँ पर एक कम्बलवाले साधु हैं। इसके अलावा और भी कई प्रकार के साधु हैं। मैं मौनी साधु हो जाऊँगा।'' **(क्रमशः)**

भूल की धूल को झटककर आगे बढ़ें

स्वामी मेधजानन्द

बचपन में साइकल चलाना सीखने के लिए एक-दो बार गिरना स्वाभाविक है। प्रत्येक बार गिरने और ठोकर खाने से व्यक्ति एक नया अनुभव प्राप्त करता है। अनुभव भले ही कड़वा हो, किन्तु वह भविष्य के लिए हमें सतर्क कर देता है। किन्तु जो व्यक्ति बार-बार जीवन के कड़वे अनुभवों से भी न सीख सके, उसका जीवन मृतप्राय हो जाता है।

लापरवाही अथवा असावधानी के कारण हम जीवन में कभी-कभी बड़ी भूल कर बैठते हैं। कभी-कभी ये भूलें हम जान-बूझकर भी कर बैठते हैं। गलती करते समय हम इसके परिणामों से अनभिज्ञ रहते हैं, किन्तु जब इसका घोर परिणाम सामने आता है, तब हमारा जीवन मानो अन्धकारमय हो जाता है। उदाहरण के तौर पर एक व्यक्ति को उसकी दाहिनी आँख में कुछ समस्या हुई। उसे धुँधला दिखाई देने लगा। उसके साथियों ने उसे डॉक्टर को दिखाने की सलाह दी। किन्तु उसने अपने मित्रों की उपेक्षा की और डॉक्टर के पास नहीं गया। कुछ दिनों बाद जब उसे कुछ भी न दिखाई देने लगा, तो वह डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने खेदपूर्वक कहा कि यदि वह कुछ दिन पहले आता, तो उसकी आँख बच सकती थी, किन्तु अब हमेशा के लिए वह अपनी दाहिनी आँख से देख नहीं सकेगा।

कॉलेज में यदि कोई छात्र पढ़ाई न करने के कारण परीक्षा में फेल हो जाता है, तो इतना निराश हो जाता है कि अपना दुख भुलाने के लिए शराब पीना शुरू कर देता है और बुरी संगत में फँस जाता है। क्या ऐसा करने से समस्या का निराकरण होता है? नहीं। सदैव आगे बढ़ते रहना ही जीवन है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''हम नरक में से होकर ही स्वर्ग की ओर कूच करते हैं। हमारी भूलों की ही यहाँ उपयोगिता है। बढ़े चलो! यदि तुम सचेत हो कि तुमने कोई गलत कार्य किया है, तो भी पीछे मुड़कर मत देखो। यदि पहले तुमने ये गलतियाँ न की होतीं, तो क्या तुम मानते हो कि आज तुम जैसे हो, वैसे हो पाते? अत: अपनी भूलों को आशीर्वाद दो। वे अदृश्य देवदूतों के समान रही हैं। धन्य है दुख! धन्य है सुख! चिन्ता न करो कि तुम्हारे मत्थे क्या आता है। आदर्श को पकड़े रहो। बढ़े चलो! छोटी-छोटी बातों और भूलों पर ध्यान न दो। हमारी इस रणभूमि में भूलों की धूल तो उड़ेगी ही। जो इतने कोमल हैं कि धूल सहन नहीं कर सकते, उन्हें पंक्ति से बाहर चले जाने दो।''

यदि जाने-अनजाने कोई गलती हो जाए, तो उससे यह सीख लेनी

चाहिए कि ऐसी गलती दुबारा न हो। बार-बार भी यदि गलती हो जाए, तो नवीन ऊर्जा और उत्साह के साथ बार-बार खड़े हो जाना चाहिए। किन्तु निराश कभी नहीं होना है। जीवन बहुत लम्बा है, यदि कुछ गलतियाँ हो भी जाती हैं, तो अपने पूरे जीवन को हताश कर देना मूर्खता ही होगी।

रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि से सभी परिचित ही हैं। वे अपने पूर्व जीवन में डाकू थे। लोगों की सम्पत्ति लूटकर वे अपना जीवन निर्वाह करते थे। किन्तु जब देवर्षि नारद मुनि से मिलकर उन्हें अपनी अनैतिक जीवन प्रणाली का ठीक-ठीक भान हुआ, तो उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ। किन्तु उनकी पश्चात्ताप की अग्नि निराशा के बादलों से ठण्डी नहीं हुई। उन्होंने भगवान की शरण ली और उनके पवित्र नाम का स्मरण कर वे रत्नाकर से महर्षि वाल्मीकि हुए।

राह पर चलते-चलते कभी हम ठोकर खाकर गिर जाते हैं। गिरने के बाद उठकर चलना और सावधानी व सतर्कता से चलना, यह सामान्य नियम है। विश्व में ऐसे अनेक महान व्यक्ति हुए हैं, जिनसे जीवन में कुछ भूलें जरूर हुई थीं, किन्तु वे हाथ-पर-हाथ धरकर नहीं बैठे रहे। वे सतत आगे बढ़ने का प्रयास करते रहे और सफल हुए। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''इन त्रुटियों के रहने में समस्या भी क्या है? मैंने गाय को कभी झूठ बोलते नहीं सुना, पर वह सदा गाय ही रहती है, मनुष्य कभी नहीं हो जाती। अत: यदि बार-बार असफल हो जाओ, तो भी क्या? कोई हानि नहीं। हजार बार इस आदर्श को हृदय में धारण करो और यदि हजार बार भी असफल हो जाओ, तो एक बार फिर प्रयत्न करो।'' ○○○

रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों द्वारा विविध कार्यक्रम आयोजित किये गये –

कर्नाटक के राज्यपाल ने, १२ अगस्त, २०१८ को मैसूर शाखा के **श्रीरामकृष्ण विद्याशाला** के प्रधानाध्यापकों को विद्याशाला की इस वर्ष की बारहवीं कक्षा के वार्षिक परीक्षा में विद्यार्थियों के उत्कृष्ट परिणामों के लिए सम्मानित किया।

रामकृष्ण मठ, विवेकाननदर इलम्, चेन्नई में २४ अगस्त, २०१८ को नागालैण्ड के राज्यपाल श्री पी. वी. आचार्य ने आश्रम का परिदर्शन किया।

रामकृष्ण मिशन, जम्मू आश्रम में नवनिर्मित स्वामी विवेकानन्द आडिटोरियम का उद्घाटन डॉ जितेन्द्र सिंह, प्रधानमंत्री कार्यालय और पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास राज्य मंत्री, भारत सरकार ने २६ अगस्त को किया। कार्यक्रम में लगभग २०० लोग उपस्थित थे।

मेघालय के राज्यपाल श्री तथागत रॉय जी ने २६ अगस्त, २०१८ को **रामकृष्ण मिशन, शिलांग** आश्रम और २८ अगस्त, २०१८ को **रामकृष्ण मिशन, अगरतला** आश्रम का परिदर्शन किया।

स्वर्णपदक मिला

रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कोलकाता के विवेकानन्द इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्स के एक स्नातकोत्तर विद्यार्थी ने इस वर्ष राष्ट्रीय परीक्षा मण्डल द्वारा आयोजित डीएनबी (ईएनटी संकाय) की वार्षिक परीक्षा में प्रथम स्थान तथा स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

सर्वश्रेष्ठ घोषित

मैसूर विद्याशाला के एक छात्र को २०१७-१८ के कनिष्ठ वर्ग एनसीसी समूह मुख्यालय, मैसूर के कनिष्ठ वर्ग में सर्वश्रेष्ठ कैडेट घोषित किया गया।

नैतिक शिक्षा एवं युवा कार्यक्रम

रामकृष्ण मिशन स्टुडेन्ट होम, चेन्नई ने ३० जून से २८ जुलाई, २०१८ के बीच पाँच शनिवारों को व्यक्तित्व विकास कार्यक्रम आयोजित किया, जिसमें ८ पॉलीटेकनिक कॉलेजों के ५५ विद्यार्थियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली ने ९ जुलाई से २१ अगस्त, २०१८ के बीच ५४ नैतिक शिक्षा कार्यशालाओं का आयोजन किया, जिसमें ६०२ प्रधानाचार्यों और ३०५४ शिक्षकों ने भाग लिया। दिल्ली के अलावा १२ अन्य राज्यों में कार्यशालाओं का आयोजन किया गया।

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट, ने अगस्त मास में १७ नैतिक कार्यक्रम आयोजित किये, जिसमें ४३९६ विद्यार्थियों ने भाग लिया।

स्वच्छ भारत अभियान

रामकृष्ण मिशन विद्यालय, कोयम्बटूर ने अगस्त, २०१८ में तीन स्वच्छता अभियान आयोजित किये। जिसमें विद्यालय के विद्यार्थियों ने मेत्तुपलयम् रेलवे स्टेशन, सार्वजनिक मार्ग तथा वन विभाग के एक कार्यालय की सफाई की।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, गुवाहाटी ने १५ अगस्त, २०१८ को 'स्वच्छता पद यात्रा' आयोजित की। उस दिन एक विद्यालय परिसर की भी सफाई की गयी।

वेदान्त सोसायटी ऑफ जापान ने १९ मई और ३० जून को टोक्यो और कोबे में सार्वजनिक सभा और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन के द्वारा स्वामीजी की जापान यात्रा की १२५वीं वर्षगाँठ का स्मरणोत्सव मनाया। दोनों कार्यक्रमों में अच्छी संख्या में लोगों ने भाग लिया। इसके अलावा, कोबे हार्बर पर, जहाँ स्वामीजी १८९३ की अपनी अमरीका यात्रा के दौरान उतरे थे, भक्तों ने स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि ज्ञापित की।

रामकृष्ण मिशन, सिंगापुर में १९ अगस्त, २०१८ को सिंगापुर के राष्ट्रपति श्री हलिमा याकूब ने एवं २० अगस्त, २०१८ को प्रधानमन्त्री कार्यालय सिंगापुर की मंत्री श्री इन्द्राणी राजाह ने आश्रम का परिदर्शन किया। ○○○